माँग का सिन्दूर

[कहानी संग्रह]

लेखक

श्री० 'ललित' शाहजहाँपुरी

प्रकाशक

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

१९४५] [मूल्य १)

प्रकाशक की ओर से

श्री० महावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव 'ललित' एक नवयुवक लेखक हैं। मैंने इनकी कुछ कहानियाँ देखीं तथा पसद कीं और उनको मैंने "विद्यार्थी" में यदा कदा प्रकाशित भी की। इस पुस्तक में उनकी लिखी कहानियों में से १६ कहानियाँ दी गई हैं। 'ललित' जी आगे चलकर कहानी लेखकों में अच्छा स्थान पा जायँगे ऐसा हमारा अनुमान है। आशा है पाठकगण इस सग्रह को पसंद करेंगे।

—शिवनन्दन शर्म्मा

विषय-सूची

माँग का सिन्दूर

१–मेरी कहानी

(१)

मेरा जन्म देहरादून में एक उच्च कायस्थ घराने में हुआ था। मेरे पिता वहाँ की कलक्ट्री के दफ्तर में आफिस सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। मासिक वेतन तो उनका दो सौ तीस रुपये था, परन्तु आय और १००) रुपए तक होजाया करती थी। दो बड़े बड़े मकान खड़े थे। किसी बात की कमी न थी। देहरादून में पिता जी का सिक्का जमा हुआ था। यही कारण है कि मेरा शैशवकाल बड़े ही सुख से बीता। मै अपने माता-पिता का एकमात्र और सबसे ज्येष्ठ पुत्र था, अतः उनका मुझमें अपार स्नेह होना स्वाभाविक था। मेरा बचपन लाड-प्यार से परिपूर्ण था। जिस किसी वस्तु को मैं ले देने को कहता, मजाल नहीं कि वह मुझे न मिलती। हठी तो मैं परले सिरे का था। मेरी यथेष्ट वस्तु के लिये मेरे माता-पिता को चाहे जितने रुपये व्यय करने पड़ते, चाहे जितनी कठिनाइयों से युद्ध करना पड़ता और जहाँ जाना पड़ता, वे मेरी इच्छापूर्ति अवश्य करते थे। उस बचपन की जब याद आती है तो रोने के सिवा कुछ नहीं बन पड़ता। जिसका बचपन इस प्रकार व्यतीत हुआ, वही मैं ऐसी दशा में।

मेरे ऐसे ठाठ-बाट देख कर हमारे सम्बन्धी, प्रतिनिवेशी, मित्र, नौकर-चाकर—यहाँ तक कि मेरे माता-पिता भी—मुझे 'लाट साहिब।' कहा करते थे। मेरा वास्तविक नाम लेकर कोई भी न पुकारता था वस्तुतः मैं इस उपाधि के योग्य था भी, क्योंकि मै किसी लाट साहब से किसी

बात में कम न था पर अब वह बात मुझमें नहीं रही है। तब और अब के रहन-सहन के ढङ्ग में पृथ्वी तथा आकाश का सा अन्तर है।

हाँ, तो, मेरा शैशव काल सासारिक सुख से, ओत-प्रोत था। मेरा आरम्भकालीन शिक्षाकार्य डी० ए० वी० कालिज में हुआ। मैंने हाई स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास कर ली। तब एक दिन पिता जी मेरे पास आये और बोले, 'कहो लाट साहब क्या करने की ठानी है?"

"पिता जी! मैं तो बीसियों बार बात चलने पर आपसे कह चुका हूँ कि मुझे तो बस कलक्टर बनना है?"

"बेटे, कहो तो हम तुम्हें नायब तहसीलदारी दिलवा दें। कुछ वर्ष के अनन्तर तहसीलदार हो जाओगे। फिर चैन की बाँसुरी बजा करेगी।"

"पिताजी मैं नायब तहसीलदारी को समझता क्या हूँ। मैं तो इसे एक तुच्छ पद मानता हू। मैं ऐसी सड़ियल नौकरी कदापि नहीं कर सकता। मुझे तो आप—यदि आपको दूर नहीं भेजना है, तो—बरे. भेज दीजिये। वहाँ से बी० ए० पास करने के उपरान्त मैं दिल्ली में आई० सी० एस० की परीक्षा दूँगा। फिर कलक्टरी के सामने नायब-तहसीलदारी क्या है? कुछ नहीं।"

'बेटे, आजकल यहाँ मेरी कुछ चलती है, अतः नायब तहसील दारी को दिलवाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। अवसर बार बार आया करते, अतएव इन्हें हाथ से न जाने देना चाहिए। न जाने में क्या हो।"

"पिता जी, जब मैं लाट साहब कहा जाता हू, तो मुझे कम से कलक्टर साहब तो होना ही चाहिये। मैं तो नायबतहसीलदारी करने रहा।"

"बेटे समय समय के राग हुआ करते हैं। यह बहुत अच्छा है।"

मैं रोने लगा। पिता जी मेरा रुदन न सहन कर सके। निदान मुझे बरेली भेज दिया।

(२)

बरेली में मेरे ठाट के क्या कहने ! मैं वहाँ पर अच्छे से अच्छा भोजन करता था और उत्तम से उत्तम वस्त्र-पहनता। मुझे अब तक स्मरण है कि मेरा शृङ्गारदान सौ रुपये का आया था जिसमें नाना प्रकार के सुगंधित तैल, अफग़ान स्नो, हिन्दुस्तान स्नो क्रीम्स, पाउडर और बढ़िया कवे-शीशे रखे रहते थे। वे तेल उस सस्ते समय में दस , रुपये सेर आते थे। कालिज जाने से पूर्व मैं एक घण्टा अपने आपको सजाने में व्यय किया करता था। मेरा शरीर सुगठित था और मेरी मुखाकृति ललित थी। ये दो बातें सोने में सुहागे का काम कर रही थीं।

जब तक मैं हैट न लगा लेता, नेकटाई न धारण कर लेता, सूट-बूट न पहिन लेता, जेब में सुगंधित रूमाल और पचास रुपये वाला फाउन्टेन पेन न रख लेता, कलाई में घड़ी न बाँध लेता, साइकिल पर न चढ लेता और मुह में पान न चबाये हुए होता, तब तक बोर्डिङ्ग हाउस से बाहर पैर न धरता था। जिस वस्तु पर मेरा मन चल जाता था, उसे ले कर ही मानता था। मेरी ऐसी दशा को देख देख कर मेरे सहपाठी मन ही मन ईर्ष्या करते थे।

सौ रुपये मासिक तो मेरे लिये बँधे हुए थे जो पिता जी मेरे पास भेज दिया करते थे। मास में दो-चार चक्कर मेरे देहरादून के लग जाया करते थे। कभी मैं जाता और कहता, "पिता जी, मुझे अमुक पुस्तक खरीदनी है।"

पिता जी पूछते, "कितने की आयगी ?"

मैं उत्तर देता, "पचास रुपये की।"

वे पचास रुपये मेरे हाथ पर ला धरते। सप्ताह-दो सप्ताह के पश्चात् मैं फिर जाता और कहता कि पिता जी मैंने एक सूट का कपड़ा पसन्द किया है।

वे प्रश्न करते, "कुल कितने रुपये लगेंगे ?"

मैं बताता, "सौ रुपए।"

वे सौ रुपये भी देने में न हिचकते। तत्काल लाकर देते। इस प्रकार मासिक व्यय ५००) के लगभग बैठता था। शायद कलक्टरों के लड़के भी इतना व्यय न कर पाते होंगे बड़े बड़े धनाढय पुरुषों के पुत्र भी मेरी बराबरी न कर सकते थे।

जब कभी मै छुट्टियों में देहरादून आया करता, तो पिता जी के साथ बैठकर बड़े, बड़े खयाली पुलाव पकाया करता था। मैं कहा करता—पिता जी! बी० ए० पास करने के बाद मैं आई० सी० एस० की परीक्षा दूँगा। फिर शीघ्र ही कलक्टर बन जाऊँगा। तब एक कोठी निर्मित करवाऊँगा। उसमे सबके लिके अलग २ अलग कमरे होंगे। सब कमरे अनेक भाँति के चित्रो, अन्य सजावट की वस्तुओं और झाड़-फनूँस से सजे रहा करेंगे। चार छोड छः नौकर रखूँगा। गाय-भैसों की तो मेरे यहाँ भरमार रहा करेगी। एक कार खरीद लूँगा जिसमें बैठकर सब लोग संध्या समय घूमने जाया करेंगे। एक जिले के ऊपर मेरा नियन्त्रण रहेगा। ज़िले का प्रत्येक बड़ा से बड़ा व्यक्ति मेरा आदेश-पालन करेगा। नित्यप्रति लोग अभिवादन करने आया करेंगे। पिता जी! बस आपकी वृद्धावस्था तो बड़े सुख से कटेगी। फिर आपको किस बात की चिन्ता?

पिता जी मौन साध जाते। हाँ, यह बतलाना मै भूल गया कि मेरी माता का देहान्त हो चुका था और अब तो मेरी विमाता के गर्भ से मेरे एक कनिष्ट भ्राता भी था। तभी तो पिताजी मुझे बरेली भेजने मे समर्थ हो सके थे।

'अपने मन कछु और है, कर्त्ता के कछु और'।

उपरोक्त कथनानुसार मेरे काल्पनिक पुलाव न पक सके क्योंकि चूल्हा जलाने के लिए लकड़ियाँ और दियासलाई न थीं।

फिर भी मनुष्य प्रयत्न करने में कुछ भी उठा नहीं रखता, सरस्वती तथा लक्ष्मी का वैमनस्य जगत्प्रसिद्ध है। एक श्लोक इस प्रकार है कि,

लक्ष्मि! क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्त—
मन्धी भवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन।

नो चेत्कथं कमलपत्र विशाल नेत्रो।
नारायण स्वपिति पन्नागभोगतल्पे ॥

अर्थात् हे लक्ष्मी ! यह कठिन निन्दा कि तुम्हारे ससग स मनुष्य अन्धे हो जाते हैं क्षमा करो। नहीं तो कमल की पखंड़ी के समान बड़े २ नेत्र वाले भगवान् नारायण शेषनाग के फण के पर्यङ्क पर क्यों शयन करते।

ठीक यही हाल मेरा था। मेरे हृदय के कपाट बन्द थे। मैं देखता था किन्तु देखता न था। या तो मै पढ़ लेता, या फैशन ही कर लेता। परिणाम यह हुआ कि इन्टरमीजियट में मैं तीसरे वर्ष—वह भी, तृतीय श्रेणी में—उत्तीर्ण हुआ। फिर बी० ए० फाइनल में तीन वर्ष तक निरन्तर असफल होता रहा। तो पिता जी बोले, "बेटे ! तुमने हमारा कहना नहीं माना। अब पछताना पड़ा।"

मैंने कहा, "पिताजी, इस वर्ष और भाग्य-निरीक्षण कर लू प्रयत्न करते रहना शायद सफलता दिला दे।"

चौथे वर्ष मुझें कुछ परिश्रम करने की सूझी। परीक्षाफल आने वाले दिन रात्रि भर मुझे निद्रा न आई और मैं खाट पर पड़ा पड़ा करवटें बदलता रहा। पहर भर रात रहे ही मै दौड़ा स्टेशन पर गया प्रतीक्षा करने लगा कि कब समाचार पत्र आये मेरा हृदय उस समय धक-धक् कर रहा था। प्राय. देखा जाता है कि नास्तिक लोग यह कहा करतें हैं कि ईश्वर कुछ नहीं है। वे ही सकट पड़ने पर जरा सी चोट लग जाने पर चिल्ला उठते हैं 'हाय ! मैं मर गया। रामजी, मोहि बचैयो। मैं ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखता था, किन्तु उस दिन मेरा हृदय कह रहा था, "हा भगवान् ! रक्षा करो। इस बार तो मेरी नैया पार लगा देना।"

समाचार पत्र आया। मैं उत्सुकता के साथ उसे देखने लगा। पर मेरे नाम का वहाँ पता भी नहीं था मानो मेरे ऊपर आकाश से वज्र टूट कर गिर पड़ा। मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गिया। मैं पिताजी के

पास गया और उनके श्रीचरणों से लिपट कर फूट २ कर रोने लगा। पिताजी के हृदय में भी स्नेह का समुद्र उमड़ आया तथा वे आँसू पोंछते हुए बोले,

"बे अदब बे नसीब।
बा अदब, बा नसीब॥"

जो बड़ों का कहना मानकर एवम् उनका सम्मान करता हुआ काम करता है, वही इस ससार में सफलता प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। गुरुजनों का आदर करना ही सफलता की कुंजी है।

मेरी अवस्था भी अधिक हो चुकी थी, अतः प्रान्त भर में बीसियों स्थान पर टक्करे मारने पर भी मुझे कोई नौकरी न मिल सकी। डलिया ढोना मेरे बस का नहीं था, क्योंकि मै लाट साहब ठहरा।

मैं पिता जी की शरण में फिर गया। उनका देहरादून में आतङ्क छाया हुआ था। उन्होंने किसी न किसी प्रकार सिफारिश कर कराके, मेरी अवस्था कम करा कर मुझे ५० रुपये की कुर्क अमीनी दिलवा दी। लज्जा से मेरा शिर नीचा हो गया। मैंने शीघ्र ही सिकन्दराबाद की तहसील का तबादला करवा लिया। अब यही रहता हू। पिता जी ने एक दो बार बुलाया भी, पर मैंने आत्मग्लानि के कारण उन्हें अपना मुख न दिखाना चाहा। मेरे यहाँ आने के एक मास बाद उनकी मृत्यु हो गई, शायद मेरे शोक के कारण

अब जब कभी अपने विद्यार्थी-जीवन तथा वर्तमान जीवन की तुलना करता हूं तो दुःख होता है। क्यों? जो लाट साहब, मै रोशनाई का एक धब्बा पड़ जाने पर अपनी पतलूनें नौकरों को दे दिया करता था, वही मैं, यदि मेरा नेकर फटा हो, तो भी इसकी चिन्ता नहीं करता। जो मै उत्तम से उत्तम भोजन करता था, वही मैं अब सूखी रोटी से ही सतोष कर लेता हू। जो मै ईश्वर को नहीं मानता था वही मैं अब घण्टों पूजा किया करता हूं। जो मैं नायबतहसीलदारी को एक तुच्छ पद समझता था, वही अब पचास रुपए मासिक वेतन वाली कुर्क-अमीनी पर डटा हुआ हूं।

२—स्नेह या प्रेम

मैं बैठक में बैठा हुआ अखबार पढ रहा था। आहट मिली। सिर ऊपर उठाया। देखा, कामिनी खड़ी थी।

'नमस्ते सन्तोष भय्या!' हाथ जोड कर उसने कहा।

'नमस्ते' मैंने उत्तर दिया।

'लो'

'यह क्या ?'

'प्रसाद'

'कैसा ?' मैंने आश्चर्यान्वित होकर कहा।

'मन्दिर में चढाया था।'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'मेरी इच्छा पूरी हुई।'

\+ \+ \+

मेरे पिता का तबादला अलीगढ से इलाहाबाद का हो गया था। वहाँ हम लोग क्लाइब रोड पर एक बँगला लेकर रहने लगे।

उस समय मै १० वर्ष का था। इलाहाबाद पहुँचने पर एक सप्ताह तक तो हम लोग सामान ठीकठाक करने और घर को सजाने में लगे रहे। उसके वाद की बात है। जूलाई का महीना था। बाहर आमवाला फेरी लगा रहा था। अम्माँ ने कहा कि आमवाले को बुला लाओ। जितनी देर में मैं बाहर निकला, उतनी देर में वह पड़ोस के बँगले में घुस गया। मै भी उसे बुलाने के प्रयोजन से वहाँ पहुँचा। देखा, सामने के बरामदे में एक लड़की, जिसकी अवस्था ७ वर्ष के लगभग

होगी, आमों का मोलभाव कर रही थी। पास में उसके पिता खड़े थे। उसके पिता को मैं पहचानता था क्योंकि वे कई दिन मेरे पिता से मिलने आए थे। वे भी मेरे पिता के दफ्तर में काम करते थे। मेरे खजाने के हेड क्लर्क थे और उसके आफिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मैंने उनसे नमस्ते की और खुश रहने का आशीर्वाद पाया। जब वे लोग आम खरीद चुके, तो मैं आमवाले को अपने यहाँ ले गया। यही थी मेरी पहली मुलाक़ात कामिनी से।

\+ + +

पिता जी के दफ्तर वालों ने कलक्टर साहब को चायपार्टी दी थी। मैं भी अपने पिता जी के साथ गया। और वहीं कामिनी भी अपने पिता के साथ आई हुई थी। पार्टी के समय बच्चे अलग मेज़ों पर बिठा दिए गए। हम दोनो के पिता ने हम को एक मेज़ पर आमने-सामने बिठा दिया। मैंने उससे पूछा था, "क्या तुम मुझे अपना नाम बताओगी?"

"मुझे कामिनी कहते हैं।" उसने कहा था।

'तुम घर से बाहर कभी नही खेलने आती। क्या तुम्हारी माँ मना करती हैं?"

"वे तो मर गईं। एक ही महीना तो हुआ।" और उसकी आँखों में आँसू छलछला आए।

"तो क्या तुम अकेली रहती हो घर।"

"नहीं। एक नौकरानी भी है। बुढ़िया है वह। क्या बताऊँ। मैं बहुत खेलना चाहती हूँ, पर वह मुझे बाहर नहीं निकलने देती।"

"अच्छी बात है! मैं तुम्हारे घर आ जाया करूँगा। तब हम तुम खेला करेंगे।"

\+ + +

मैंने अपना नाम पिता जी से ज़िद्द करके एनीबीसेन्ट स्कूल में लिखवाया था। उसी में कामिनी पढती थी। हम दोनों साथ २ बस में

बैठकर जाते और साथ २ ही लौटते। स्कूल में भी खेल की घन्टों में अवश्य मिलते। मैं अपने माता-पिता का अकेला लड़का था और वह अपने पिता की अकेली लड़की। दोनों लाड़ले थे। दिन में कभी वह हमारे घर आती और घण्टों बैठी रहती, और कभी मैं उसके यहाँ जाता और देर तक उसके साथ खेलता या बातचीत करता। हम दोनों की बातचीत भी होती थी स्कूल की घटनाओं पर।

मेरे घरवाले मुझे उसके यहाँ जाने से कभी न रोकते और न उसे मेरे यहाँ आने से कोई रोक-टोक थी। हम लोग बड़े हो चले थे साथ खेलते, कूदते, खाते-पीते, मौज करते। उसकी बूढ़ी धाय जो उसे खेलने से रोकती थी, उसे मेरे यहाँ आते देख कुछ न कहती। हम दोनों के पिता हमें एक साथ खेलते देखकर प्रसन्न हुआ करते। और यही वह कामिनी थी जो मेरे जीवन का एक मुख्य अङ्ग बन गई थी। वह मुझे 'सन्तोष भय्या कहती थी' और मैं उसे 'कामिनी'।

\+ \+ \+

'मेरी इच्छा पूरी हुई'

उसके ये शब्द मेरे कानों में गूँज रहे थे। और मेरे सामने धुँधली स्मृतियाँ स्पष्ट होती जा रही थी। घटनाचक्रों की रेखाएँ बनती-बिगड़ती मेरे सामने आ रही थीं। मैं सोच रहा था किस तरह हम दोनों की मुलाकात हुई और कैसे हम इतने पास पहुँचे। 'इच्छा' इस शब्द में सब कुछ भरा पड़ा है। किन्तु इच्छा उसकी पूरी नहीं हुई, बल्कि मेरी भी।

सिनेमा के फिल्म की भाँति अतीत के बनते बिगड़ते चलचित्र नज़र आ रहे थे। एक के बाद दूसरा। दूसरे के बाद तीसरा। कामिनी सामने खड़ी थी। मैं प्रसाद को हाथ में थामे था। कुछ ध्यान टूटा। मैंने उसकी ओर सकेत किया। वह पास की कुर्सी पर बैठ गई। अब हम बच्चे न रहे थे। दोनों कभी के यौवन में पदार्पण कर चुके थे। कामिनी ने इसी वर्ष इण्ट्रेन्स पास किया था और मैं अलीगढ़ से

बी० टी० पास करके लौटा था। इरादा तो था कि इम्तहानों के बाद दिल्ली और लाहौर घूमने जाता, किन्तु पिता जी ने पत्र में लिखा था कि परीक्षा समाप्त होते ही तत्काल चले आओ।

मैंने कहा "कामिनी ! तो लाओ प्रसाद खाया जाय।"

हम दोनों ने प्रसाद खाया। मैंने उससे कहा "अब तुम जाओ। मैं थोड़ी देर में तुम्हारे यहाँ आऊँगा। इस वक्त मुझे एक काम से जाना है।"

वह चली गई, एक आश्चर्य की दृष्टि मेरी मुखाकृति पर डालती हुई। आज मै उसको समझ न पा रहा था।

+   ×   +

वह चली गई और मै सोचता रह गया। पिता जी ने मेरे घर आने पर मुझसे पूछा था "तुम्हारी शादी कामिनी से तय की जा रही है। बोलो। तुम्हें स्वीकार है ?"

मैं सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा।

वे कहते गए "ऐसी लड़की मिलनी मुश्किल है। सुशीला, चतुर, पढ़ी-लिखी, सुन्दर काम-काज में होशियार सभी कुछ तो है। फिर मैंने तो यही सोचा है कि उसके साथ विवाह करने से तुम्हारा जीवन सुखमय हो जायगा। तुम अच्छी तरह सोच-समझ लो।"

उस दिन रात को मैंने यह पत्र लिखा था,

पूज्य पिता जी !

मैं कामिनी से विवाह करने पर राज़ी नही। क्या आप ध्यान नहीं देते कि वह मुझे 'सन्तोष भय्या' कहती है। क्या भाई-बहिन की कहीं शादी हुआ करती है। हम एक दूसरे से प्यार करते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम दोनों प्रेमी-प्रेमिका हैं। आशा है आप इस बात पर गौर करेंगे और इस विचार को सदा के लिए हृदय से निकाल देंगे।

आपका
सन्तोष

सुबह ही सुबह मै पत्र उनकी मेज पर रखकर टहलने चला गया था। लौटने पर कामिनी के घर पहुँचा। द्वार बन्द था। अन्दर से किसी के वार्त्तालाप की आवाज़ आ रही थी। मैंने पहचाना और सुना।

"देखो! सन्तोष जैसा वर तुम्हें न मिलेगा। सुशिक्षित, स्वस्थ, गुणवान, सभ्य—सभी कुछ तो है।"

पिता जी!" यह शब्द कहने वाली कामिनी के टपटप आँसू गिर रहे थे। मैं दराज से झाँक रहा था।

लड़खड़ाते शब्दों में उसने कहा था, "पिता जी आपको लज्जा आनी चाहिए। जिसको मै 'भैया' कह कर-पुकारती हूँ उसे वर चुनूँ। पिता जी! मै आत्मघात कर डालूँगी, पर भाई से शादी न करूँगी।" दिन भर मैं घर नहीं गया। इधर-उधर घूमता रहा। दोपहर को मैं कामिनी से मिला था। उसने कहा था "भैय्या! क्या अपनी बहन को भूल जाओगे?" और उत्तर में मेरे आँसूओं की धाराएँ प्रवाहित थीं। हम दोनों ही देर तक रोते रहे। कामिनी ने इष्टदेव को प्रसाद माना।

\+ \+ \+

शाम को मै बैठक में अखबार पढ रहा था। पिता जी घर पर न थे। माता जी को मै पहले ही कामिनी से विवाह न कराने पर राज़ी कर चुका था। आहट मिली। सिर ऊपर उठाया। देखा. कामिनी खड़ी थी।

'नमस्ते सन्तोष भय्या!' हाथ जोड़ कर उसने कहा।

'नमस्ते' मैंने उत्तर दिया।

'लो'

'यह क्या?'

'प्रसाद'

'कैसा?' मैंने आश्चर्यान्वित होकर कहा।

'मन्दिर मे चढाया था।'

'क्यों' मैंने पूछा।

'मेरी इच्छा पूरी हुई।'

३—सुपुत्र

(१)

'रामू'

"कहिए माता जी, क्या आज्ञा है ?" रामप्रसाद ने नम्रता पूर्वक पूछा।

"ठीक ठीक बता कि तूने मेरे तोड़े चुराकर कहाँ रक्खे हैं। मिल ही नहीं रहे हैं" लाल लाल आँखें दिखाते हुए माता बोलीं।

"कौन से तोड़े माता जी, मुझे क्या मालूम कि आपके तोड़े कहाँ रक्खे रहते हैं। मैंने तो उनको हाथ भी नहीं लगाया" रामप्रसाद आश्चर्य से पूछने लगा।

-'क्यों रे ! झूठ बोलता है। चोरी और ऊपर से सीनाज़ोरी। देख, मैं भी आज तेरे पिता जी के आते ही सारी बात कह दूँगी। बहुधा जबान चलाने लगा है।" माता रोष पूर्वक बोली।

' माता जी, क्रोध न कीजिये, पहले घर में भली भाँति देखभाल लीजिये। अच्छी प्रकार ढूँढ़िये। जहाँ पर आपने रखे थे, वहीं पर होंगे। शायद आप भूल गई हों।"

"कम्बख्त कहीं का। दुष्ट, फिर वही बात। निकल जा घर से काला मुख करके मुझे अब अपनी शक्ल भी न दिखाना। देखूँगी कि दिन भर भूखा रह कर तू क्या करेगा। मैं तो खाना देने से रही।"

× × ×

पिता जी के घर आने पर

"क्यूँ जी, रामू कहाँ गया है ?"

"आज उसने मेरे तोड़े चुरा लिए थे, इसी कारण घर से निकाल दिया।"

"ओफ! इतनी ईर्ष्या! इतनी घृणा! पहिले भली प्रकार ज्ञात ता कर लेतीं कि उसी ने चुराये थे या और किसी ने।" यह कहते हुए बाबू कृष्णसहाय घर से बाहर हुए।

+ + +

पाठकगण! आप ऊपर का दृश्य देख कर समझ गए होंगे कि मामला क्या है। यदि नहीं तो सुनिये। बाबू कृष्णसहाय डाकखाने में ११०) मासिक वेतन पाने वाले पोष्ट मास्टर हैं।

रामप्रसाद आप ही का सुपुत्र है। रामू नौ ही वर्ष का था कि उसकी माँ की मृत्यु हो गई। सोचिए तो सही उस समय रामू की दशा। अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। एक वर्ष पश्चात् बाबू कृष्णसहाय ने दूसरा विवाह किया। रामप्रसाद को अब हम 'रामू' ही कहेंगे। रामू की विमाता रामू से बहुत ईर्ष्या करती है। उस बेचारे को देख देख कर कुढा करती है। उस बेचारे के पास न तो पैर में जूते हैं और न सिर पर टोपी। यदि बेचारा इन वस्तुओं को ले देने की प्रार्थना करता तो तत्काल बेचारे पर 'अभी तो खरीद कर ही दिये थे, दो वर्ष ही में खतम कर डाले,' की फटकार सुननी पड़ती। बेचारा महान् सङ्कट में रहता। उसका जीवन दुखी था। उसकी यह विमाता प्रत्येक नवीन फैशन में रहती है। ११०) रुपये बीस दिवस में ही चाट लेती है किन्तु इतना भी उससे नहीं होता कि उसे जूता टोपी ले दे।

रामू गुरुकुल विद्यालय में हिन्दी व संस्कृत अध्ययन करता है। एक आदर्श ब्रह्मचारी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करता है। ईश्वर की कृपा से उसे एक सज्जन गुरु मिल गये हैं। वह उसे पढाते लिखाते तथा उसकी इच्छाओं की भी समय समय पर पूर्ति किया करते हैं। रामू बहुत सुशील लड़का है। माता-पिता की आज्ञा-पालन करने में ही यह अपने बाल्य-जीवन का सुख समझता है। आज घर में उसकी विमाता की धींगी चलती है। बाबू कृष्णसहाय भी स्त्री में लिप्त रहते हैं। अपने सुपुत्र की ओर ध्यान नहीं देते। स्त्री के कहने को बिल्कुल सत्य मान लेते हैं। यदि

वह किसी दिन रामू को खाना न दे तो भी पोस्ट मास्टर साहिब इसकी कुछ परवाह नहीं करते, कह देते हैं 'ठीक किया'। परन्तु है तो अपना ही पुत्र। अतः कभी कभी अपने पुत्र के प्रति प्रेम का सञ्चार भी हो आता है और स्त्री को कुछ कुछ डाट-डपट भी देते हैं। पर वह आजकल के फैशन की बीबी डॉट की क्या परवाह करने लगी।

आज सुबह इसी विमाता मिसेज कृष्णसहाय ने अपने तोड़ों को तकिए के अन्दर छिपाके उसे सीकर रामू पर झूठा दोष लगाया था। परन्तु रामू बड़ों को ऐसा कहना बुरा समझ कर चुप हो रहा यह दृश्य तो आप लोग देख ही चुके हैं।

\+ \+ \+

वह विचार रहा था। क्या ? कुछ। कौन ? वही, हमारी कहानी का नायक—अर्थात् रामू। वह चल नहीं रहा था, बल्कि सोच रहा था। वह सोच रहा था उस समय का दृश्य जिस समय उसकी माता ने मरते समय उसका चुम्बन किया था। वह सोच रहा था जब उसकी आँखों के सामने उसकी माता का शव श्मशान घाट पर ले जाया जा रहा था और वह लाख चेष्टा करने पर भी, रोने-चिल्लाने पर भी, हाथ-पैर पटकने पर भी तथा न जाने क्या क्या करने पर भी अपनी माता की लाश के साथ न जा सका था। वह अपने विचारों में इतना मग्न था कि एक तागे से धक्का खाते खाते बचा। ऐसा देख कर वह एक वृक्ष के नीचे एक पत्थर पर जाकर बैठ गया और अपने विचारों में फिर से सलग्न हो गया।

गली में आकर रामू को एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ देखकर बाबू कृष्णसहाय बोले, "रामू! क्या बात है ?'

कोई उत्तर नहीं मिला। फिर उसके पास पहुँच कर उसका कधा हिला कर अपने प्रश्न को दुहराया। इस बार भी शान्ति रही। इस पर पोस्ट मास्टर साहब को क्रोध आ गया और वे उसे डाँटते हुए बोले, "क्यों बे! सुनता नहीं है। क्या पूछ रहा हूँ।" इस बार रामू की विचार-तन्द्रा भग्न हुई। बाबू जी एक चपत लगाते हुए उससे वहाँ आने का

कारण पूछने लगे। रामू ने सारा हाल कह सुनाया। सुनाते सुनाते उसकी आँखों में आँसू आ गए क्योंकि वह दिन भर का भूखा था, आज उसे अन्न देवता के दर्शन प्राप्त न हुए थे, अतः उससे स्पष्ट रूप से न बोला गया।

बाबू साहब उसका उतरा हुआ चेहरा देख कर समझ गए कि वह भूखा है, दया आ गई। एक हलवाई की दुकान के पास ले गये। गरमागरम पेट भर कचौड़ियाँ खिलाईं। फिर घर ले गये। आज उसने खूब छक कर भोजन किया है। और दिन तो आधे पेट भी नहीं मिलता था। अब वह स्पष्ट बोलने लगा।

घर आकर कृष्ण सहाय जी को ठीक २ किस्सा ज्ञात हो गया है। रामू से बोले "क्यों बे! यह तेरी माता जी सच कहती हैं?"

"मैंने चोरी नहीं की।"

'तो क्या यह झूठ बोल रही हैं?"

रामू बड़े को झूठा बताना बुरा समझता है, चाहे वह वास्तव ही में झूठा हो। ऐसा विचार कर वह चुप हो रहा।

कृष्णसहाय ने रामू को घर से निकाल दिया।

× × ×

रामू ने गुरुजी का आश्रय लिया। अब वह उन्हीं के पास रहने लगा। उन्होंने उसे शाबाशी दी और कहा कि 'पुत्र, तुम्हारा कहना बिल्कुल यथार्थ है।"

एक दिन रामू रात्रि भर अपने विषय में विचारता रहा। अचानक सुबह के तीन बजे रेल की सीटी सुनाई दी। गुरुजी का घर स्टेशन के समीप ही था। उसके मस्तिष्क में यह विचार भ्रमण करने लगा कि "कल इसी गाड़ी से मैं अवश्य ही कहीं न कहीं चला जाऊँगा पर मेरे पास तो एक धेला भी नहीं है। परन्तु ईश्वर सब का सहायक है। वह अपने इस विचार को दृढ़ करने लगा।

× × ×

दूसरे दिन प्रातः काल

एक लड़का जिसकी अवस्था १४-१५ वर्ष के लगभग होगी, ढाई बजे अन्धकार में स्टेशन की ओर जा रहा है। पाठकगण, आप समझ गए होंगे कि यह वही पूर्व-परिचित रामप्रसाद है। अरे! वह देखिए रामू से लगभग दस क़दम आगे एक साहिब बहादुर सूट पहिने, सिर पर हैट तथा गले में नेकटाई धारण किए हुए और हाथ में घड़ी लगाए हुए अपना बिस्तरा सड़क पर रखे हुए इस फ़िराक़ मे खड़े थे कि कोई मिले तो उसके सिर पर अपना बिस्तरा लदवा कर चले। रामप्रसाद ने यह देख कर आगे बढ़ कर उनसे पूछा, "कहिये तो मैं आपका बिस्तरा स्टेशन तक पहुँचा दूं।"

यहाँ पर इन साहब बहादुर का परिचय करा देना आवश्यक जान पडता है। आपका नाम डाक्टर ईश्वरी प्रसाद है। आप लखनऊ महा-विश्वविद्यालय में आचार्य हैं। आप हज़रतगज नामक मुहल्ले में रहते हैं और सूरजध्वज कायस्थ हैं। बहुत सज्जन पुरुष हैं।

हाँ तो प्रोफेसर साहिब ने रामप्रसाद को सिर से पैर तक देखा। मन ही मन कहने लगे, "बालक तो काफी स्वस्थ व सुशीला प्रतीत होता है।" प्रकट में पूछा, "युवक, तुम्हारा परिचय!" प्रत्युत्तर मिला, 'जी, मेरा नाम रामप्रसाद है। मै कुलश्रेष्ठ कायस्थ हूँ।" इतना कह कर रामू चुप हो रहा। आचार्य जी अथवा प्रोफेसर साहिब बोले, "और कुछ?" रामू बोला, "और कुछ पूछ कर क्या करियेगा, किन्तु यदि आपको और कुछ जानने की पूर्ण अभिलाषा है, तो स्टेशन पर सुनियेगा।"

ख़ैर, रामू बिस्तरा लेकर चलने लगा बिस्तरा बहुत भारी था। रामू को अब कठिनाइयाँ प्रतीत होने लगीं। पर वह शीघ्रता से स्टेशन की ओर बढ़ा और प्लेटफार्म पर बिस्तरा गिराकर सुस्ताने लगा। वह बड़ी बड़ी साँसें लेता हुआ अपनी सारी राम कहानी सक्षेप में सुना गया।

आचार्य जी ने पूछा, 'मेरे साथ चलोगे?' 'चला चलूँगा'' रामू बोला। प्रोफेसर साहब ने दो टिकट लखनऊ तक के लें लिए।

× × ×

ईस्ट इडियन रेलवे के ड्योढ़े दर्जे मे

रात्रि के साढ़े तीन बजे एक ड्योढे दर्जे के डिब्बे मे केवल दो पुरुष सोते हुए दिखाई दे रहे हैं। वह लीजिये डिब्बे में न मालूम कौन दो जने काला बुर्का ओढे हुए प्रवेश कर गए। अरे वाह ! दोनों जने उन सोते हुए पुरुषों पर झपटे। गुत्थम-गुत्था होने लगी। रामप्रसाद ने धीरे से जंजीर खींच दी। गाड़ी रुक गई। गार्ड डिब्बे में घुसा। एक काला आदमी भागा। रामू ने उसकी टाँग पकड़ ली। वह धड़ाम से दूसरी पास वाली पटरी पर हो रहा। सिपाही द्वारा पकड़ा गया। पाठक ! अब आप समझ गए होंगे कि ये दोनों पुरुष जो सो रहे थे, वही पूर्व-परिचित प्रोफेसर साहिब और रामप्रसाद थे। ये दो काले आदमी प्रसिद्ध चोर थे। गार्ड तथा सिपाहियों के आ जाने से दोनों चोर पकड़े गये। गार्ड ने पूछा, "ओ, चेन किसने खेचा?" रामू बोला, "जी मैंने।" "टो, डेखो, मै टोम से खोश होकर टोम को साबासी डेटा ऊँ और एनाम मैं पचाश रोपया डेटा ऊँ। इशको लो।'' यह कहता हुआ गार्ड ने सीटी दी और हरी झडी दिखाई। रेल चल पड़ी अगले स्टेशन पर गार्ड अपने डिब्बे में चला गया।

(२)

प्रोफेसर साहिब रामप्रसाद को घर लें गए। कुछ दिनों बाद रामू बड़ा हो गया। वहाँ उत्तम से उत्तम भोजन तथा कपड़े मिलते। यह आचार्य महाशय का नौकर न था। एक नातेदार की भाँति रहता है।

एक दिन रात्रि मे आचार्य महाशय के घर में पाँच प्रसिद्ध डाकू आये। राम प्रसाद ऊपर सो रहा था। अचानक उसकी आँख खुल गई। तत्पश्चात् कुछ खटका हुआ। वह ऊपर छत पर से पीछे की ओर गली में कूद पड़ा। थाने मे गया। ग्यारह सिपाही उसके साथ

आए। डाकू पकड़ लिए गए। आचार्य जी ने रामू पर अत्यन्त प्रसन्न होकर ५००) रुपये का पुरस्कार दिया। प्रोफेसर साहिब ने अब उसे गवर्नमेंट हाई स्कूल पढने भेज दिया। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में रामू ने मेट्रिक पास कर लिया। हाई स्कूल परीक्षा में तीन विषयों में उसका डिस्टिंकशन आया था। टोटल से सयुक्त प्रान्त भर में वह प्रथम आया था। उसने कालेज 'ज्वाइन' कर लिया। इन्टरमीजियेट तक उसे १६ रु० मासिक स्कालरशिप मिलता रहा। रामू के पढाने-लिखाने के सारे कार्य का भार प्रोफेसर साहिब पर था। रामप्रसाद जनवरी व फरवरी दो मास बी० ए० फाइनल में बीमार पड़ गया। तीसरी मार्च को बुखार ने पिण्ड-छोडा। दस-ग्यारह मार्च तक रामप्रसाद को रोटी इत्यादि मिलने लगी। बीस मार्च तक उसे पूर्ण स्वस्थ होने में लगे। २३ मार्च से उसकी परीक्षा थी। इस वर्ष रामप्रसाद फिर प्रथम श्रेणी (फर्स्ट डिवीजन) में उत्तीर्ण हुआ। अब उसने पढना छोड़ दिया।

× × ×

'प्रोफेसर साहिब है ?'' प्रोफेसर साहिब के पड़ोसी प० चन्दन लाल ने पूछा। इतने हो में प्रोफेसर साहिब अन्दर से आते हुए दृष्टिगोचर हुए, "चलो कुछ गप्पाष्टक ही लडावें"।

"बैठक में आ जाइये।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् पण्डित जी बोले—इस बात का तो मुझे भी महान् दुःख है कि आप इतने धनीमानी सज्जन होने पर भी निस्सन्तान हैं।

प्रोफेसर साहिब कुछ उदास हो आये।

कुछ देर बाद फिर हँसी-मजाक होने लगा। प० जी बोले, 'देखिए परसों बाबू सरदार बहादुर ने एक लडका गोद लिया है। आप इतने योग्य तथा सुशील लड़के को गोद क्यों नहीं ले लेते ?''

"अरे भाई क्या करूं ? ले तो लेता, पर आजकल मेरी स्त्री के भी बच्चा होने वाला है। अतएव ऐसा नही किया।"

पंडित चन्दन लाल खिलखिला कर हँस पड़े ।

सभा समाप्त हुई । दोनों अपने अपने घर गए ।

× × ×

रामप्रसाद अब एल० टी० करके गवर्नमेंट हाई स्कूल में असिस्टेंट अध्यापक हो गया है । ७५) रुपया प्रति मास पाता है ।

एक दिन खाली बैठे बैठे उसे सूझ पड़ा ।

"क्या हुआ ! आखिर तो वे माता-पिता ही हैं । हो न हो मेरा जी तो यही करता है कि उन्हें यहीं अपने पास बुला लूँ । जो कुछ भी हो अब तो मैं उन्हें बुलाता ही हूँ ।" अन्त में उसने पत्र डाल दिया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल कृष्ण सहाय अपनी स्त्री से कह रहे थे कि, "कल सबसे बड़े डाकखाने के पोस्ट मास्टर ने यह पत्र चपरासी के हाथ मेरे पास भिजवाया था । उसमें लिखा था 'Krishna Sahai transferred to Lucknow'

अब क्या होगा, वहाँ जाकर कैसे रहेंगे ?"

कृष्णसहाय के आगे रामू का दृश्य नृत्य करने लगा । उनके अश्रु टपक पड़े । 'हाय मैंने क्या कर डाला । अपने प्राण प्रिय पुत्र को निर्दोषी होते हुए भी घर से बाहर कर दिया । हाय ! मेरा कितना पत्थर की भाँति कड़ा हृदय हो गया था । इस समय २३-२४ वर्ष का होता । मालूम नहीं मरा अथवा जिया । यदि वह इस समय मेरे पास होता तो पहिले से लखनऊ जाकर मकान की खोज करता । भगवान ने मुझे दूसरी सन्तान भी तो न दिखाई ।" इत्यादि २ ।

"मेरे सामने उस दुष्ट मुये का नाम न लो ।" मिसेज कृष्णसहाय बोलीं ।

इतने ही में डाकिए ने पुकारा । लिफाफे पर एक कोने में लिखा हुआ था 'From your Loving son Rama Prasad of Lucknow' ।

कृष्णसहाय ने पत्र पढ़ा। पत्नी को सुनाया, 'रामप्रसाद लखनऊ में गवर्नमेंट हाई स्कूल में पिछत्तर रुपए मासिक पर अध्यापक हो गया है। उसने एक अच्छा सा मकान किराए पर ले लिया है। तुम्हें और मुझे बुलाया है। चलो, कल सध्या की गाड़ी से चलेंगे।"

मिसेज कृष्णसहाय ने कुछ अनमनी-सी होकर कहा, 'जैसी आपकी इच्छा।'

× × ×

आज रामू लखनऊ के स्टेशन पर खड़ा किसी की वाट जोह रहा है। इतने हीं में देहरा एक्सप्रेस आती दिखाई दी। मिस्टर तथा मिसेज कृष्णसहाय अपने समस्त सामान सहित खाड़ी से उतरे। रामू अपनी माता के चरण-स्पर्श करने को पहिले झुका तथा मधुर वाणी से उनका समाचार पूछता हुआ दृष्टिगत हुआ। उसके बाद उसने पिता के चरण छुए। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक रामू को आशीर्वाद दिया। वह अब भी रामप्रसाद को न पहिचान सके।

'पिता जी'

कृष्ण सहाय के आँसू आ गए। पुत्र से चिपट कर खूब देर तक रोये। रामू ने कहा, "चलिए पिता जी, माता जी को भी ले चलिए, ताँगेवाला खड़ा है।"

माता-पिता को पहिले प्रोफेसर साहिब के पास ले गया। उन्हीं के घर पर सब उतरे। प्रोफेसर साहिब भी पोस्ट मास्टर साहिब की फैमिली को देखकर अत्यन्त मुदित हुए। मुहर्रम की छुट्टियाँ थी। पोस्ट मास्टर साहिब की भी उस दिन छुट्टी थी। दिन भर बड़े आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ। ईश्वरी प्रसाद के यहाँ बिल्कुल घर का सा मामला था! माता जी उदासीन ही रहती थी।

स्कूल कभी का खुल चुका है। मास्टर साहिब स्कूल जाने लगे हैं। पोस्टमास्टर साहिब का डाकखाना तो उसके दूसरे दिन ही खुल गया था।

× × ×

आज रामप्रसाद का विवाह है। खूब धूमधाम के साथ बारात इलाहाबाद निवासी बाबू माया प्रकाश की सुपुत्री राधेश्वरी देवी के साथ मास्टर रामप्रसाद के विवाह करने के लिए जायगी। पोस्ट मास्टर साहिब अपने एकमात्र पुत्र रामप्रसाद के विवाह में खूब रुपया व्यय कर रहे हैं।

बड़ी धूमधाम से विवाह कार्य हुआ। बहू घर पर आयी।

× × ×

इस वर्ष गर्मी अधिक पड़ी। चेचक फैल गयी। हमारी मिसेज कृष्णासहाय इसका शिकार बनीं।

परन्तु रामू अपने कर्तव्य से विमुख न हो हुआ।

(३)

एक नवयुवक तथा एक युवती बैठे हुए एक अर्द्धवयस्क स्त्री की सेवा-सुश्रूशा कर रहे हैं। उसके हाथ-पैर दाब रहे हैं। अर्द्धवयस्क स्त्री किसी गहरे विचार में मग्न है। कुछ देर पश्चात् उस स्त्री की आँखों में आँसू आ गए। वह रो पड़ी। फूट फूट कर क्रन्दन करने लगी। रोते रोते बोली, "बेटा! क्षमा करो। मैंने तुझे बहुत कष्ट दिए, अब मैं उनकी क्षमा माँगती हूँ। हा भगवान्! मेरी क्या दशा करेगा। ऐसे सुपुत्र-रत्न को पाकर भी मैंने उसकी कुछ परवाह न की, ईश्वर इसे भला-चगा रक्खे।" यह कहकर दोनों से चिपट गई।

नवयुवक बोल उठा, "माता जी। आप कैसी उल्टी बातें करती हैं! इसमें सारा दोष मेरा ही है। आपका कुछ नहीं। मैंने आपको घर में अकेली छोड़ दिया। इससे बढ़कर और क्या अपराध हो सकता है। माता जी, चिन्ता न कीजिये। क्षमा करिए।"

'नहीं बेटा"

'तो क्या आप मुझे क्षमा न प्रदान करेंगी?"

"अरे, तू तो पहिले ही क्षम्य है।"

पाठक! आप समझ गए होंगे कि ये कौन हैं। घूँघट काढे जो

युवती सेवा में तन-मन लगाए हुए हैं, रामप्रसाद की धर्मपत्नी राधेश्वरी देवी है।

× × ×

रामप्रसाद तथा राधेश्वरी देवी दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। राधेश्वरी देवी बड़ी धर्माचारिणी व पूर्ण पतिव्रता है।

रामप्रसाद तथा उसकी माता की अब खूब पटती हैं। माता जी जब तक रामप्रसाद का मुख न निहार लेती, उन्हें कल न पड़ती। उनके जीवन का आधार रामप्रसाद ही था।

एक दिन माता जी फिर विचारने लगी, "हाय! ससार क्या कहेगा! मैंने कितना अधर्म किया। यदि कोई दूसरा होता तो पचास जूते मारकर घर से निकाल देता। ओफ! मै क्या करूँ। विधाता ने मेरे भाग्य मे ऐसा ही लिखा था।" यह विचारते विचारते उनके मुख से निकल पड़ा. 'मेरा लाल! तू सुपुत्र है।'

४–सरोज का पान

उदरपूर्त्ति के लिये जो कुछ भी करना पड़ जाय, थोड़ा है। इस पापी उदर के लिये प्राणिमात्र पापकर्म तक का अनुष्ठान करने को उद्यत हो जाता है। इसके लिए उसे चोरी करनी पड़ती है, असत्यवादन करना पड़ता है, छल-कपट का आश्रय लेना पड़ता है, स्वदेश त्यागना पड़ता है, परदेश-गमन करना पड़ता है, भाँति २ की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं, दूसरों की परिचर्या करनी पड़ती है, कहाँ तक कहा जाय, यह सभी कुछ करा कर छोड़ता है। कैलाश ने लाखों जोर लगा लिए, किन्तु उसका तबादला न रुक सका। निदान अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने वतन शाहजहाँपुर को देखते हुए कैलाश ने मेरठ की ओर प्रस्थान किया, पराधीन ठहरा।

मेरठ मे आकर कैलाश 'प्रेम होटल' मे जा टिका यहाँ उसे घरकी याद बहुत आती। कभी माता के स्नेह का स्मरण हो आता, तो कभी मित्रों के हँसी-ठट्ठों का, और कभी अन्य सम्बन्धियों की बातों का। कोई भी लम्बी छुट्टी होती, तो वह शाहजहाँपुर जा पहुँचता। उसने मेरठ में आकर देखा कि वहाँ कोई भी ऐसा न था जिससे वह कुछ सहानुभूति की आशा रख सके। उसने पास-पड़ोस में पूछा भी, परन्तु कोई ऐसा मनुष्य न मिल सका जो उसी के नगर का निवासी हो कैलाश मेरठ में अकेला था। कोई उसका साथी नही, कोई उसके पास बैठ कर दो बातें करने को नहीं, कोई उसके क्लेशों में सान्त्वना देने वाला नहीं।

इस वर्ष कैलाश ने जून में एक मास की छुट्टी ली, वहाँ से लौटते समय वह जिस डिब्बे में आकर बैठा, उसमें पहिले से ही कोई समवयस्क नवयुवक बैठा था। प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि जब हम रेलगाड़ी में बैठते हैं, तो बराबर मे बैठने वाले से प्रथम प्रश्न यही

करते हैं कि 'आप कहाँ जायेगे ?' शायद इसी प्राकृतिक नियम से प्रेरित हो कर कैलाश ने उस युवक से पूछा, "कहिए ! आपको कहाँ जाना है ?"

उत्तर मिला, 'मैं तो मेरठ तक जाऊँगा।"

यह सुन कर कैलाश के हृदय में प्रसन्नता देवी आनन्द की हिलोरें लेने लगीं। उसने फिर प्रश्न किया, "आप शायद लखनऊ से आ रहे हैं !"

"नहीं, मैं भी यहीं से सवार हुआ हूँ !"

"क्या आप रहने वाले भी शाहजहाँपुर के ही हैं ?"

"हाँ।"

"किस मुहल्ले में आपका मकान है ?"

"रङ्गमहल में।"

अब तो कैलाश-अन्धे को मानो लकड़ी का ही सहारा मिल गया हो। यहाँ पर यह बता देना कि यह युवक मेरठ के एक वकील का पुत्र है असङ्गत न होगा। कैलाश ने जब देखा कि दोनों एक ही नगर के निवासी हैं और एक ही स्थान पर रहने जा रहे हैं, तो उसके हर्ष की सीमा न रही। उसने अपना हृदय उस युवक के सामने खोल कर रख दिया। उस युवक को भी उसके प्रति समवेदना हो गई। मेरठ के स्टेशन पर उतर कर दोनों ने एक ही तांगा किया। मार्ग मे 'प्रेम-होटल' पडा। कैलाश तागे से उतरने लगा, तो युवक बोला।

"अच्छा ! अब तुम्हारा होटल तो मैंने देख ही लिया। किसी दिन यहा आकर तुम्हें घर ले चलूँगा।"

कैलाश 'नमस्ते' करके चला गया॥

+ + +

रविवार का दिन था। वह युवक जा कर कैलाश को अपने घर लिवा लाया। और बैठक खोलकर एक कुर्सी खींच के स्वय बैठ गया, तथा दूसरी कैलाश के सामनें कर दी। वार्त्तालाप आरम्भ हो गया।

प्रथमेव युवक विमलकुमार बोला, "यही मेरी झोंपड़ी है।"

"झोंपड़ी काहे को, यह तो आपका महल है।'

इतने में एक नवयुवती यौवन के मद में झूमती हुई, दृगों में कौतूहल भरे हुए, मधुर अधरों पर विचित्र मुस्कुराहट लिये हुए, ललित कपोलों पर कमनीय कान्ति के साथ, पर्दे के पास आकर खड़ी हो गई। कैलाश को देखते ही उसने 'नमस्ते' की। उसकी 'नमस्ते' कमरे में गूँज उठी। कैलाश ने भी काँपते हृदय से नमस्ते का प्रत्युत्तर दिया।

'देखो! ये कैलाश बाबू भी हमारे शाहजहाँपुर के ही रहने वाले हैं। ये अब यहाँ आया करेंगे। अच्छा इन्हें पान तो लाकर खिलाओ।"

'बहुत अच्छा' कह कर वह सुन्दर मूर्त्ति भीतर विलीन हो गई। कैलाश द्वार की ओर टुकुर २ देखता रह गया।

युवक नें कहना प्रारम्भ किया, 'क्या बताऊँ। विधाता नें मेरे भाग्य में तो कुछ लिखा ही नहीं। आज से ठीक दो वर्ष पूर्व मेरी माता का देहान्त हुआ। उस समय हम तीन भाई-बहिन थे सरोज को तुम देख ही चुके हो। मुझसे बड़ा एक भाई सुशील और था। सुशील माता जी की नाक का बाल था। इसी कारण से उसे पूर्वोक्त घटना पर महान दुःख हुआ। तब से उसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। गत वर्ष उसका विवाह मुरादाबाद से हुआ था, किन्तु शोक! विवाह के उपरान्त वह अधिक दिवस तक जीवित न रह सका। एक मास पश्चात् ही वह सबको बिलखता छोड़ कर इस लोक से चल बसा। कहते कहते विमल का गला रुँध गया, नयनों मे नीर भर आया, एवम् शोक से प्लावित हृदय किसी की स्मृति में व्याकुल हो उठा। विमल के पिता बहुत पहिले ही मर चुके थे।

आँसू पोंछते पोंछते उसने फिर कहा, "अब घर में केवल तीन जनें हैं। मैं, सरोज और सुशील की वधू। मैं आधुनिक विचारों का मनुष्य हूँ। इसी वर्ष सरोज को मैंनें मेट्रिक की परीक्षा दिलवाई। यह द्वितीय श्रेणी में समुत्तीर्ण हुई। इसकी अवस्था १७ वर्ष है। विवाह के योग्य

हो आई है। जब से सुशील की मृत्यु हुई, तब से मै भी घुला जाता हूँ। अब सरोज के विवाह की चिन्ता और शेष है। तुम भी इसके लिए किसी योग्य वर को खोज कर बताना।"

'बहुत अच्छा' कहकर कैलाश निस्तब्ध हो रहा।

विमल फिर बोला 'घर तो तुमने देखा ही लिया है। अब तो यहाँ कभी कभी आ जाया करना।"

इतने मे सरोज पान लेकर आई। यौवन के उन्माद में क्रीड़ा करती हुई सरोज ने पान वाला हाथ कैलाश की ओर कर दिया। कैलाश ने पान उठाया, तो सरोज का कोमलकर स्पष्ट हो गया। फिर क्या था! दोनों के हृदय की तन्त्री झन्कृत हो उठी। उनके शरीर में विद्युत् की धारा दौड़ गई। उन्हें एक विचित्र आनन्द का अनुभव हुआ। इस अनुपम प्रेम के मधुर बन्धन में बँधकर वे अपने आपे को खो बैठे। वे एक ऐसे जगत् मे जा पहुँचे जहाँ उन दोनों के अतिरिक्त और कोई न था। यह सब एक सेकन्ड के सौवे भाग में ही घटित हो गया।

'नमस्ते'

'नमस्ते' झेपते हुए कैलाश बोला।

+ × ×

वह चला जा रहा था। विमल के घर से होटल को। सुहावनी ऋतु थी। नभस्थल निर्मल था। मन्द २ पवन के शीतल झोंके खाता हुआ, वह चल रहा था। हृदय कहता—लौट चलो। आत्मा धिक्कारती—वहाँ जाकर विमल से क्या कहोगे? वायु के थपेड़े लगते, और वह पथ-सरिता में स्नान करता हुआ आगे को बढता। भगवान् भास्कर पश्चिम-दिशा में लालिमा दर्शाते हुए मानो सूचित कर रहे थे कि मैं थक चुका हूँ तथा शीघ्र ही विश्रामस्थल को जाना चाहता हूँ। गोबर-कूड़े से रहित सड़कों पर जनसमूह घूमने निकल रहा था। कहीं २ मैदानों मे लडके खेलते दिखाई दे रहे थे। किन्तु कैलाश को कुछ पता नहीं।

आज रात्रि मे कैलाश के नेत्रों में निद्रा कहाँ! आँखें आकाश मण्डल की ओर लगी हुई थीं, किन्तु उन्हें तारागण एवम् शीतांशु महाराज न सूझते थे। कर्ण पास में थे, परन्तु होटल में होने वाला कोलाहल न सुनाई पड़ता था। स्थूल शरीर तो बिस्तरे पर था, पर सूक्ष्म मन कहीं और। आज किसी ने उसके हृदय का अपहरण कर लिया था। सामने था सरोज का मनोरम चित्र। भोली चितवनों वाले गोल २ नेत्र, लालसा भरे हुए अधर, कमनीय कान्ति-मय कपोल, यौवन से मदमाता अठखेलियाँ करता हुआ शरीर, चाँद सा मुखड़ा। 'नमस्ते' में जीवन की अखिल सरसता। आनन्द की लहरो से तरङ्गित भविष्य!

उधर सरोज का भी हाल बेहाल था। आज उसमे भोजन न किया जा सका। भाभी के कारण पूछने पर साधारण पेट दर्द का बहाना कर दिया। विमल भय्या पड़ोस के एक वैद्य से चूर्ण ले आये। परन्तु दर्द तो तब मिटे, जब वास्तव में हो। यह तो हार्दिक दर्द था। इसकी औषधि प्रेमी के मिलन के अतिरिक्त और क्या हो सकती है! आज वह एकाकिनी न थी। आज वह एक से दो हो गये थे। आज उसके साथ कोई दूसरा भी था। जब काई किसी से मिलने जावे, और वह पड़ कर सो रहे तथा उससे बातें भी न करे, यह कहा की सभ्यता है! तभी तो सरोज न सो सकी, क्योंकि किसी दूसरे का आदर—सत्कार करना था, एवम् उसको किसी न किसी प्रकार रिझाना था।

अब तो कैलाश बहुधा सरोज से उसकी बगिया में मिलता, घुल—मिलकर बाते हुआ करतीं। प्रेमी और प्रेमास्पद के मध्य प्रेमदेव लीला किया करते। कैलाश को सरोज, और सरोज को कैलाश के देखे बिना कल न पड़ती। दोनो एक हो चुके थे न!

बड़े दिन की छुट्टियों में शाहजहाँपुर जाने से पूर्व अन्तिम बार जब दोनों का सयोग हुआ, तो सरोज ने कैलाश से चलते।२ कहा—पत्र डाल देना। पर वहाँ जाकर कैलाश पत्र न डाल सका। लिखता भी कैसे, लिखने का अवकाश ही न था। कोई घड़ी ऐसी न जाती जिसमें कोई न

कोई उसके पास बैठा न रहता। अबकी बार छः मास के अनन्तर गया था न। उसने बहुत चाहा, परन्तु प्रिय सरोज को पत्र न डाल सका।

इधर सरोज को अहर्निश पर्वत से प्रतीत होते थे। एक २ मिनट एक २ युग की भाँति व्यतीत होता। विमल बाबू किसी कार्य-वश लाहौर गये हुए थे। एक दिवस मध्यान्ह के समय भाभी जी अपने कमरे में सो रही थीं। जी न माना, तो सरोज ने अपना बक्स खोला, और उसमें से कुछ निकाला। उस 'कुछ' में उसका सर्वस्व था। उस 'कुछ' का हृदय से आलिङ्गन करके वह प्रेमाश्रु बहाने लगी। मधुर सङ्गीत छिड़ गया—

दिल दिया,
और ग़म लिया,
यह क्या किया ?

मानो सरस्वती देवी स्वयं प्रत्यक्ष होकर वीणा पर गा रही हो। आवाज मधुर थी, गीत का एक २ पद हृदय की विकलता को बोधित कर रहा था। इन बातों ने उसके गाने में चार चाँद लगा दिये थे। अतः गाना हृदयग्राही और चुभने वाला था।

इस ससार में सर्वत्र तारतम्य भेद-भाव दृष्टिगोचर होता है। एक ओर सुख, दूसरी ओर दुःख, एक ओर दिन, दूसरी ओर सुन्दरता, दूसरी ओर कुरूपता। ससार की इसी गति के अनुसार सरोज प्रेम के नशे में चूर, और भाभी जी वैधव्य के कष्ट से पीड़ित। शोक के साथ कहना पड़ता है कि भाभी जी पतिदेव से प्राप्त वैवाहिक सुख अधिक दिनों तक न भोग सकीं। सुसराल आने के एक मास उपरान्त ही हाथों की चूड़ियाँ उतर गईं, माँग का सेंदुर मिट गया, पैरों के बिछुए न रहे और शरीर आभूषणों से विरक्त हो गया। हाय रे उनका दुःख !

प्रायः बाँझ पुत्रवती को देखकर, विधवा सधवा को देखकर, विषाद-ग्रस्त आनन्दित को देखकर, और निर्धन धनी को देखकर ईर्ष्या किया करती है। जब कैलाश और सरोज का प्रेमालाप हुआ करता, तो भाभी जी

दवे पाँव कमरे के पास जाकर कान लगा के उनकी बातें सुना करतीं। आज भी उनकी आँखें खुल गईं, और वह धीरे २ सरोज के कमरे के पास जाकर खड़ी हो गईं। आहट पाकर सरोज ने उस प्राणप्रिय 'कुछ' को तो बक्स में बन्द कर दिया, और चुप होकर बैठ रही। बक्स का खटका भाभी जी को भी सुन पड़ा। सरोज को शान्त होते देख भाभी जी ने कमरे में प्रवेश किया। मामा भान्जे का, देवर भाभी का नन्द भौजाई का और नन्दोई व सलहज का नाता परस्पर मजाक करने का होता है। अतएव भाभी जी ने भी चुटकियाँ लेना आरम्भ किया। बोलीं "बीबी जी! तुम्हारे इन कपोल 'सरोजों' का रसिक 'भ्रमर' कौन सा है? मैं भी तो जानूं।"

"भाभी जी रामकृष्ण के घर से बुलावा आया है। तुम भी चलोगी?"

"बीबी जी, हो तो बहुत चतुर, इसी बहाने मेरी बात को टाल गईं।"

'भाभी, तुम बड़ी वैसी हो, तुम्हे हर समय ऐसी ही बातें सूझती हैं।"

नौकर ने नीचे से आवाज दी और भाभी जी उठ कर चली गईं।

सरोज ने वस्त्र बदले केश-सँवारे, कानों में बुन्दे डाले और चप्पल पहनकर रामकृष्ण के घर चली गई। शीघ्रता में बक्स की चाबी बक्स के ऊपर ही रखकर भूल गई। कार्य से निवृत्त होकर भाभीजी सरोज के कमरे में आईं। चाबी देखकर उनकी मुखाकृति आह्लाद की लालिमा से दूनी दमक उठी। बक्स खोला। अरे यह क्या! यह तो किसी की फोटो जान पड़ती है। दृष्टि गड़ाकर देखा, तो कैलाश के आकार से मिलती -जुलती थी। ऐं! क्या यह कैलाश का चित्र है। क्या कैलाश ही 'सरोज' सरोज का मधुकर है? क्या वही सरोज का प्रेमी है? हाँ, हाँ। शायद वही। उसी को सरोज रानी हृदयेश्वर मान चुकी

हैं। वही इनके कपोल कमलों का रसपान करेगा। ऐसा ही है। दोनों प्रेमबद्ध हैं।

+ × +

होली पर दो दिन से अधिक छुट्टी न मिलने के कारण कैलाश शाहजहाँपुर न जा सका। वह वकील साहब से होली मिलने गया। बातों—बातों मे ही सरोज के विवाह की चर्चा छिड़ गई। विमल ने कहा, "कैलाश बाबू! तुमने अब तक किसी उचित वर को नहीं बतलाया।"

कैलाश ने घुमा-फिराकर अस्पष्ट शब्दों में कहा, "उसके लिये मैं उपस्थित हूँ।"

विमल बाबू तत्काल ही कैलाश के आशय को समझ गये। विमल नवीन विचारों का युवक था परन्तु वह ब्राह्मण और कैलाश कायस्थ—वह असवर्ण विवाहों का पक्षपाती न था। अतः उसकी नाक—भौंह चढ गई।

कैलाश भी अधिक देर बैठा रहना उचित न जानकर वहा से चला आया।

+ + +

दूसरे ही दिन कैलाश को एक पत्र मिला। उसमें लिखा था, "कुछ विशेष कारणों से मै तुमसे घनिष्ट मित्रता का सम्बन्ध तोड़ता हूँ। विमल।"

अब तो दोनों के हृदयों की विह्वलता वर्णनातीत है। सन्ध्या समय सरोज अपने घर से लगे पिछवाड़े की वाटिका में जाया करती थी। विमल के पत्र का पता सरोज को न था। कई दिन तक कैलाश के दर्शन न हुए, तो उसकी वेदना बढ़ गई। किसी कार्य में उसका मन न लगता था। एक सप्ताह बाद की बात है कि वह उपवन में टहल रही थी। उस उद्यान में अनेकों वृक्ष लगे हुए थे, नाना प्रकार के पुष्प शोभित थे, सघन लताएँ प्रसरित होकर एक दूसरे का स्पर्श कर रही थीं, मनभावन

दृश्य था, पर सरोज के हृदय का हाल न पूछो। एक ओर से दूसरी ओर को जाती, पर यहाँ उसका चितचोर न था। कमल पर भौंरे को देखकर उसकी उग्रता और भी बढ़ गई। उससे यह देखा न गया। वह आगे बढ़ी, एक आम का वृक्ष पड़ा। इस वृक्ष को, उसने जब वह ७ वर्षीया थी, तब स्वय अपने हाथों से लगाया था। अब यह बढ़कर फल फूल रहा था। आम पर बौर आ रहा था, परन्तु वह .. । आगे बढ़ी तो इमली का वृक्ष आया। शैशवकाल में वह इस की इमलियों को तोड़कर बड़े स्वाद से खाया करती थी, पर आज उनमें इतना स्वाद कहाँ! फिर शहतूत का पेड़ पड़ा। इस पर भी फल आने लगे थें, पर वह । लौकाट भूमि पर पड़े हुए थे, किन्तु आज उनमें इतना आकर्षण कहाँ जो वह उन्हें बीनकर खा सके। एक क्यारी में बेला फूल रहा था दूसरी में चमेली, तीसरी में चम्पा, चौथी में जूही, पाँचवीं में कामनी, परन्तु आज ये उसके लिए सुगन्धिप्रद न थे। गुलाब में भी वह बात न थी। भीनी २ वायु चल रही थी। पर सरोज को यह बगिया पूर्ववत् शान्ति न दे सकी। आज उसका हृदय किसी के लिये व्यग्र था। एक ओर पत्ते खड़के। सरोज के नेत्र यकायक ऊपर को उठ गये। सामने उसका मनमोहन खड़ा था। दोनों एक दूसरे को एक टक देखते रह गये। फिर कुछ बातें हुईं।

× + +

दूसरे दिन

नित्य प्रति सरोज घूमकर चिराग़ जलने से पूर्व ही घर पर आ जाया करती थी, पर आज वह न आई। विमल ने समझा कि किसी सखी के घर चली गई होगी। चिराग जल गये, सन्ध्या बीत चली, पर उसका कहीं पता नहीं। धीरे २ रजनी देवी असख्य तारों से सज्जित व्योम रूपी सुन्दर साड़ी पहन कर चारों ओर विराजमान हो गईं प्रगाढ अन्धकार फैलने लगा। सरोज अब भी टहलकर न लौटी। अब तो विमल बाबू को चिन्ता हुई। लालटेन लेकर बगिया में देखने गये। पर वह

मिले तो तब जब वह वहाँ हो। सड़क पर आकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, पर कहीं न दिखाई दी। घर आकर नौकर को पड़ोस के घरों में भेजा, परन्तु वह न मिली। चिन्ता देवी बड़े भयङ्कर रूप से विमल को अत्यन्त भयभीत करने लगीं। वे दौड़े २ एक प्रेस के मैनेजर के पास गये।

अखबार में निकला—

मेरी भगिनी का नाम सरोज है। १६ वर्षीया वह हरी साड़ी पहिने हुए है। सुडौल गोरा शरीर है। आज सन्ध्या—समय से वह गायब है। जो कोई उसका पता लगाकर मेरे पास लावेगा, मै उसे १००० रुपये का पुरस्कार दूँगा।

पर उस दिवस के अनन्तर 'सरोज' सरोज, प्रात काल होने पर, ऊषा-काल आने पर भी कभी, मेरठ रूपी उद्यान में न खिल सका। माता तथा भाई का शोक अभी दूर न हुआ था कि वहन से भी हाथ धो बैठे। एक दिन वीता, दो दिन बीते, एक सप्ताह बीत गया। एक मास भी समाप्त होने को आ गया, परन्तु १००० रुपये व्यय न हो सके।

+ + +

बङ्गाल प्रान्त में मनोहरपुर नामक छोटा सा एक नगर है। उसमे हाल ही में एक स्त्री—पुरुष किसी अन्य प्रान्त से आकर रह रहे हैं। उनके नाम हैं नरेन्द्र और सरला। धन्य है उनकी पवित्र गृहस्थी। उनकी दिनचर्या सुनिये।

दोनों तड़के ही उठते हैं। शौचादि से निवृत्त होकर नरेन्द्र तो भजन-पूजन में लग जाता है और सरला भोजन पकाती है। भोजन करने के उपरान्त नरेन्द्र तो अपने कार्यालय एक प्रेस में चला जाता है और सरला अन्य काम—धन्धों में लग जाती है।

सायङ्काल को नरेन्द्र के घर को लौटते समय सरला उसकी वाट जोहा करती है। घर आकर नरेन्द्र सरला का एक चुम्बन लेता। उस

मधुर चुम्बन में उसकी थकान दूर हो जाती। वह अपने को परम भाग्य-शाली समझता।

सरला सरला होते हुए भी सरला नहीं है। चञ्चलता तो मानो उसकी सगी भगिनी है। इसी से यदि हम उसे चञ्चलता कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह अपने प्रत्येक कर्म से नरेन्द्र को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती। भोजन करते समय उसे मीठी-मीठी बातें सुनाती।

यह था शान्त एवम् सुखी जीवन। कलह से दूर रहने वाला, प्रेम-मय जीवन। इस जीवन के क्या कहने। इसका अनुमान लगाना टेढी खीर है। प्रेमपूर्ण जीवन। कभी विवाद नहीं, कभी चें चे, मे में नहीं, प्रेमियों का कभी मारपीट नहीं, कभी दुःख नही। धन्य है तुम्हारे शुद्ध जीवन को!

प्राय. समाज प्रेमी और प्रेमपात्र के विवाह नहीं होने देता। यह प्रेमियों को विवाह के एक सूत्र में बँधते हुए नही देख सकता। कहता है—दोनों भिन्न २ वर्ण के हैं। किन्तु यह उसकी महान मूर्खता है। इसके परिणामस्वरूप प्रतिवर्ष बहुत से युवक और युवतियाँ प्रेम के विरह में जलकर मर जाते हैं, आत्म-हत्या कर बैठते हैं और न जाने क्या २ कुकर्म कर डालते हैं। अत: सिद्ध होता है कि समाज ही उन बुरे कामों का कारण है। तभी तो भारतवर्ष दिन पर दिन अवनति के गढे में गिरता जा रहा है। समाज के ऊपर ही देश का उत्थान निर्भर है। अतएव समाज को चाहिये कि वह कभी प्रेमी के मधुर बन्धन में रोडा न अटकाया करे। पुण्यगृहता का ज्वलन्त उदाहरण प्रेमियों में ही दिखाई देता है।

५–वज्राघात

(१)

जिला उन्नाव में मौरावाँ एक मनोहर ग्राम है। इसकी नैसर्गिक छवि अत्यन्त नयनाभिराम है। इसमें सभी वर्णों के मनुष्य निवास करते हैं। इसका जीवन कोलाहल पूर्ण नागरिक जीवन से कहीं दूर रहता है! हरियाली देवी का तो यहाँ मानों वास ही है। कारण यह कि उपवनों, उद्यानों एव बागों ने इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये हैं। निर्मल जल वाले तालों की, जो ललित पुष्प वाटिकाओं तथा सरोज-पंक्तियों से आवृत्त होकर सुशोभित हैं, छटा देखते ही बनती है। यही मेरी ननसाल है। शैशवावस्था मे नानी के घर जाने का बड़ा चाव रहा करता है, मुझे भी था। यहाँ पक्षी और पशुओ की किलोलों, झूमती हुई डालियों और लहलहाते हुए खेतों और चिड़ियों की चहक तथा खेल-कूद मे मुझे जो आनन्द प्राप्त होता था वह अब मनुष्यों के समाज, बिजली के पङ्खों की हवा ऊँची-ऊँची अटारियों वाले प्रासादो, नृत्य, सगीत और दर्शनशास्त्र के विषय मे विचारने में भी नहीं मिलता। यहाँ प्राकृतिक प्रागण से आनन्द ग्रहण करने मे मुझे वही मजा आता था, जो मेंढक को बरसात में, शराबी को शराब मे, भगवद्भक्त को भक्ति करने में और युद्धवीर को समराङ्गण में आया करता है।

जब मैं तेरह वर्ष का था, तो एक बार मौरावाँ जाने का अवसर हाथ लगा, क्योंकि मौसी का पाणिग्रहण सस्कार होने को था। गर्मियों की छुट्टियाँ थीं, अतः विवाह कार्य सकुशल निपट जाने पर भी हम वहाँ टिके रहे। कुछ काम-धाम तो रहता ही न था। बस दैनिक कार्य-क्रम यही रहता था कि कभी इस बाग से उस बाग मे जाते, कभी वृक्षों से अभीष्ट फल तोड़-तोड़ कर खाते, कभी बेसुर का राग अलापा करते

और कभी खेलते-कूदते मौज करते थे। इस कर्म में मैं एकाकी ही न था, प्रत्युत मेरे साथी भी रहते थे। १३ वर्ष की अवस्था पा चुकने पर भी मुझे छुआछूत और ऊँचनीच का ज्ञान नहीं था। शूद्र बालकों के साथ भी क्रीड़ा करने में मैं हिचकता न था। चिन्ता रहित खेलना, खाना, निर्भय होकर स्वच्छन्दता पूर्वक फिरना—ये उस जीवन के अतुलित आनन्द थे।

मेरे इष्ट मित्रों में से एक से मुझे विशेष प्रेम था। उसका नाम था छेदा। यह बेचारा कभी-कभी ही खेल पाता था। इसका पिता परभुआ एक साधारण कृषक था। परभुआ की औसत आय २५०) रुपया साल के लगभग होगी। इसमे से काफी हिस्सा साहूकार के ब्याज और गवर्नमेंट के लगान में निकल जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि इसके घर वालों को पेट भर खाना नहीं मिलता था। परभुआ की सम्पत्ति एक गाय, दो बैल, दो-चार टूटेफूटे बर्तन और फटे पुराने कपड़ों से अधिक नहीं थी। फूस का एक छोटा सा झोपड़ा था जिसमें एक कोठरी थी, उसके आगे एक दालान था और उसके सामने एक छोटा-सा आँगन। आँगन के एक कोने में गाय बँधी रहती थी, दूसरे कोने में कडे रखे रहते थे, तीसरे में भुस का ढेर था और चौथा बर्तन माँजने का स्थान। शीतकाल में कपड़ों के अभाव के कारण वे प्रायः रातें आग के सहारे से काटते थे। कुछ सम्पत्ति न होने से ऋण भी बहुत ब्याज पर मिलता था और मूल तो क्या ब्याज पूरा करना भी कठिन होता था। एक बार तो खड़ी खेती कुर्क हो गई थी, पर राम भला करे रघुराजसिंह का जिन्होंने अपने पास से रुपया देकर खेत छुड़ा दिया था। उसका जीवन वास्तव में दुःख और क्लेश की एक कहानी है। ये सब के सब अपढ थे। पढते भी कैसे जब कि निर्धनता देवी ने इनके जीवन को उन्नत बनने देने में रोड़ा अटका रखा था। परभुआ के तीन बच्चे थे। सब से बड़ा छेदा था, जिनकी आयु ११ वर्ष के लगभग होगी। उससे छोटी गुलाबो थी, जो परभुआ के विचार में विवाह योग्य हो चुकी थी।

सब से छोटा हरिया था। गुलाबो ८ वर्षीया थी तथा हरिया की अवस्था पाँच वर्ष से अधिक न थी। इन सब का स्वास्थ्य बहुत खराब था। ये सदैव मैले वस्त्र पहने रहते थे। हरिया तो जन्म का रोगी था। प्रायः माया उसके घर का हाल सुनाया करते थे।

हम लोग जो नगरों में रहते हैं, कल्पना करते हैं कि कृषक पृथ्वी पर सबसे सुखी मनुष्य हैं। किन्तु वस्तुओं का वास्तविक रूप उनकी बाह्य चमक-दमक से नहीं जाना जा सकता।

परभुआ, उसकी पत्नी और बच्चे अपने क्षेत्र पर लगभग वर्ष भर काम करते थे। गेहूँ या कपास बेचकर जो रुपया आता, उसमें से कुछ तो किराये में निकल जाता और कुछ सिंचाई के कामों में। वे स्वयं ज्वार-बाजरा खाते, और हाथ का कता-बुना-कपड़ा पहनते थे। तो वे कुछ बचा ही कैसे सकते?

जब कभी कोई माँदा पड़ जाता—और वे बहुधा रोगग्रस्त हो जाते—वे अच्छा करने के लिये प्रकृति देवी का मुँह ताका करते। निकृष्ट भोजन खाते और निकृष्ट कपड़ा पहिनते थे। तो वे औषधि का प्रबन्ध कहाँ से करते। वे जाड़ों में ठिठुरते, गर्मियों में व्याकुल रहते और बरसात में असह्य कष्ट का अनुभव करते थे। दूध, मक्खन, और फल कभी कभी चख पाते।

परभुआ की पत्नी अनाज बीनती, भोजन पकाती, कुएँ से जल भर कर लाती, झोंपड़ी की सफाई करती, कपड़ धोती, बच्चों की देखभाल रखती और परभुआ को खेत सींचने में सहायता देती थी। परभुआ स्वयं खेत जोतता, बीज बोता, फसल की निगरानी रखता, फसल काटता और अनाज एकत्रित करता था। जो कुछ थोड़ा-बहुत रूखा सूखा मिल जाता उसी को वह खा लेता और कठिन परिश्रम करता था। गुलाबो के विवाह की चिन्ता उसे दिन-रात सताये रहती। परभुआ यह सब सहन करता था। वह अपने भाग्य को कोसता बुरा समझता था। उसे विधाता की दया में

विश्वास था। दिन में काम करते समय अधिकतर वह परमात्मा के प्रति प्रार्थना किया करता। 'कबहुँ तौ दीन दयालु के भनक परैगी कान।'

जेठ के महीने में भी, जब भगवान दिनकर अपनी रश्मियों को चारों ओर प्रसरित किए होते जब लू के झोके किसी को घर से बाहर न निकलने देते जब प्यास विकल किए देती, जब सम्पन्न गृहस्थ घर में पड़े खर्राटे लिया करते, तब भी परभुआ को खेत से छुट्टी न मिलती थी। जाड़े की कड़ाकड़ सर्दी और बरसात की बूँदाबाँदी उसको काम करने से न रोक पाती थीं।

इतना सब कुछ होते हुए भी जब कभी मैं छेदा के घर जा पहुँचता था, तो उसकी माँ पर्वतिया मुझे चने की रोटी और शाक ला उपस्थित करती। फिर गुड़ का शर्बत पीने को देती। यह सब खाने-पीने में स्वाद आया करता, वह अब पूड़ी-रायते और लेमनेड में भी नहीं आता।

कभी २ मैं परभुआ के खेत पर जा पहुँचता था। तब परभुआ मुझे ककड़ी और खरबूजा खाने को देता। इसके उपहारस्वरूप मैं उसका कुछ काम करवा लेता था। सहनशीलता और सहानुभूति की साक्षात् मूर्त्ति परभुआ निर्धन तो अवश्य था, पर हृदय का नहीं। देखते ही देखते गुलाबो के विवाह की तय्यारियाँ होने लगी। विवाह कार्य भी निपट गया।

\+ + +

स्कूल खुल चुके थे। घर चला आया।

(२)

दशहरे की छुट्टियों में मुझे फिर ननिहाल जाना पड़ा, क्योंकि नानी का स्वर्गवास हो गया था। तेरहवीं हो चुकी थी। छुट्टी का अन्तिम दिवस था। मामा के लड़के सतीश के साथ ताश खेल ही चुके थे कि छेदा मेरे पास दौड़ता हुआ आया और बोला, 'तोहका बप्पा बुलाये हैं।"

सन्ध्या का समय था। खूँटी पर से कमीज़ उतार कर गले में डाल ली और उसके साथ चल दिया। द्वार पर पैर धरते ही छींक हुई।

सामने ही दालान में एक खाट बिछी हुई थी। उस पर कोई रोगी लेटा था। उसके गाल पिचक गये थे, आँखें गड्ढे में धँस गई थीं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई थी। शरीर में केवल हड्डियाँ ही शेष थी। मैंने पूछा, "यह कौन है ?" छेंदा रोने लगा। मैंने उसके रोने का कारण पूछा, तो एक टूटी खाट पर मुझे बिठा कर छेंदा ने कहना आरम्भ किया।

'ए भय्या तुम हमारी हालत जानते हो। गुलाबो की शादी माँ बप्पा रामलाल महाजन से कई सौ रुपया लिये रहे। रामलाल ने महीना भर के अन्दर माँगे रहें। तौन यहि साल कछु बरसात नाहिं भई। सारी फसल मारी गई। उधर जमीदार साधौ को लगान को कर्जो चढ़ि गओ। दुइअ महीना भये रहें कि एक दिना रामलाल अपने नौकर गोपी का भेजिस। ऊ बप्पा से रुपया मागै लगा। बप्पा ने कहि दई कि हम कैसे दै सकतु हैं अन्न की तौ हमारी फसलऊ कौ नुकसान है गओ। एहि पर रामलाल जमींदार से रपट कर दिहिस। जमीदार फखरुद्दीन आयें। उन्होंने दुइ सिपाही भेजे। ते हमारी गैया का पकड़ि ले गये। वाको बेचि के रामलाल को कछु रुपया मिलि गओ। फेरि जमीदार ने लगान माँगो। बप्पा कैसे दै सकत रहैं। एहि पर ऊने पचास कोड़न को हुकुम दै दओ। जासे बप्पा की पीठ छिलि गई, देही से लहू निकलन लागो अउर बदन भर माँ लाल लाल चकत्ता पड़ि गयो। फेरि जमींदार ने एक महीना की मुहलत दई। कहिन कि एक महीना माँ रुपया नाहिं मिले तौ बोटी २ कटवाय डरिहौं। वाहि दिना से बप्पा का बुखार आवै लगा। अभहिनै दसइ दिना केरि तौरे बताइ आया। ज्यूँ ज्यूँ दवा करी, त्यूँ त्यूँ मरज बढतइ गओ। दवा तौ क्या आव, पड़ोसन के घर से तुलसा की पत्ती माँगि कै वाको चाह पिलावत हौ। हमारे बूते डॉक्टर की दवा कहाँ। तासे कौनो फायदा नाहीं था। करम के लिक्खे को को जान सकत है।

"रात सपना में मैंने लाल पीले पहने सजी सजायी गाड़ी पालकी

बरात देखी रहै। अउर मोर नाई अँखियाँ फड़कत है। आजु या चिट्ठी आई है। ए भइया, तनिक पढ़ि देउ, का लिखो है।"

अँधेरा हो चला था। हरिया रोटी माँग रहा था और पर्वतिया दिया जला रही थी। दिया जलाकर उसने चिराग के हाथ जोड़े और धीरे धीरे कहा, 'सन्ध्या सब दुख टारनी पाप हारिनी दुख दारिद्र हरे—सब आई बलाय दीपक में जरै।" फिर हरिया को रोटी देने चली गई। छेदा ने चिट्ठी हाथ में दी और चिराग मेरे पास ला रखा।

मैंने पत्र पढ़ा। जो कुछ उसमें लिखा था, उसे पढ़कर मेरा हृदय शोक से द्रवित हो गया। नेत्रों में अश्रु छलक आये।

मैंने कहा "गुलाबो के श्वसुर का पत्र आया है। इसमे लिखा है कि मदन (गुलाबो का पति) की मोटर के नीचे असावधानी से आ जाने के करण आकस्मिक मृत्यु हो गई। शीघ्र चले आओ।"

यह सुनते ही कोहराम मच गया। मैंने कहा भी कि, "परभुआ की दशा अच्छी नहीं है। अतः अधिक मत रोओ पीटो" परन्तु नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है।

शायद परभुआ के हृदय पर वज्राघात हुआ। उसने आँखें खोली, पानी माँगा। छेदा ने पानी पिला दिया। फिर परभुआ ने कहा, "तुम रोइयो मती। मैं जात हौं। मोहे खटिया से उतारि लेओ।" यह कहकर परभुआ ने नेत्र मूँद लिये और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

छेदा पास ही में खड़ा था। उसके टपटप आँसू गिर रहे थे।

\+ + +

मेरी छुट्टियाँ समाप्त हो चुकी थीं।

६—सिविल मैरिज

(१)

मनोहर बड़े दिन की छुट्टियाँ समाप्त करके दिल्ली से इलाहाबाद लौट रहा था। बड़े आदमी का लड़का ठहरा—इण्टर क्लास में बैठा था। कानपुर के स्टेशन पर एक परिपक्व अवस्था का पुरुष एक लड़की के साथ उसी डिब्बे में चढ़ा। लड़की की अवस्था १८ वर्ष के लगभग रही होगी। वह धानी रङ्ग की साड़ी पहने हुए थी। नीले रङ्ग का ब्लाउज उसकी पोशाक की शोभा बढ़ा रहा था। पतले-पतले होंठ, बड़ी-बड़ी आँखें, सुर्खी-लगे गाल। उठी हुई छाती उसके यौवन को सूचित कर रही थी। शरीर मदमाता था। अहा! मुँह तो चन्द्रमा की उपमा देने लायक था। युवती बड़ी आकर्षक जान पड़ती थी।

मनोहर भी एक रसीला युवक था। उसकी मुखाकृति भी बहुत सुन्दर, शरीर सुडौल, देह का प्रत्येक अवयव जवानी से मानो फूटा पड़ता था।

कुछ देर पश्चात् जब गाड़ी चलने लगी, तो मनोहर ने उन अधेड़ उम्र वाले महाशय से पूछा, "आप कहाँ तक जाएँगे?"

उत्तर मिला, "इलाहाबाद तक जाऊँगा।" फिर कुछ देर रुक कर उन्होंने प्रश्न किया, "और आप?"

"मैं भी"

"अच्छा अच्छा तब तो बड़ी खुशी की बात है। आपका मकान है किस मुहल्ले में?"

"फ़िलहाल तो नये कटरे में एक कमरा ले कर रहता हूँ।"

"क्या आप कहीं पढ़ते हैं?"

"जी हाँ" और इससे पहले कि वह कुछ और कहता, युवती ने

'पापा ! जरा ताली दीजिये। एक नावेल निकालकर पढ़ूँगी।' कह कर उनकी बातचीत बन्द कर दीं।

अंग्रेज़ी की दो नाविलें निकाल कर दोनों बाप-बेटी उन्हें पढने लगे। मनोहर थका-मॉदा होने के कारण सो रहा। फ़तहपुर-स्टेशन पर जोर से धक्का लगते ही उसकी ऑखें खुलीं और उसने स्टेशन की ओर दृष्टि दौड़ाई तो देखता क्या है कि वह युवती उसकी ओर टकटकी लगा-कर देख रही है। युवती ने मनोहर को देख कर मुह फेर लिया।

+ × +

इलाहाबाद में आये मनोहर को एक महीना हो गया। एक दिन जब वह यूनिवर्सिटी से लौट रहा था तो क्या देखा कि उसके बराबर वाले खाली मकान में कोई किराएदार आया है। उससे अगले दिन उस मकान के दर्वाजे पर एक साइनबोर्ड पर A L Massey, Guard लिखा था। समझ गया कि कोई ईसाई आकर बसा है। और उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ जब कि २-३ दिन बाद उसने उन्हीं रेल वाले बाबू साहब को अपने कमरे में प्रवेश करते देखा।

"गुडमार्निङ्ग मिस्टर!"

"गुडमार्निङ्ग सर!"

"डू यू रिकग्नाइज़ मि?"

"यस यस, आई हैव सीन यू आन सम ट्रेन।"

"वेल, कल मैंने तुम्हें यूनिवर्सिटी जाते देखा तो मुझे कुछ ख़्याल हुआ कि शायद तुम्ही हो। विल यू पलीज टेल मि योर नेम? Mine is A L. Massey"

"सर! माई नेम इज मनोहर कान्त।"

+ + +

होली की छुट्टियों में मनोहर ने आगरे की सैर करने की सोची। जिस दिन वह बिस्तर बाँध रहा था, तभी मेसी साहब उसके पास आकर बोलें, "हलो मिस्टर कहाँ की तय्यारियाँ हैं?"

"आगरे जाने का इरादा है साहब।"

"क्या सचमुच ?

"कहिए आपको क्यो आश्चर्य हुआ ?"

'अरे भाई ! मेरी डाटर होली भी आज रात की गाड़ी से आगरे जा रही है। उसके अन्किल बीमार हैं। बिचारी पहलें—पहल जा रही है। अच्छा हुआ जो आप भी वहीं जा रहे हैं।"

"अच्छा अच्छा।" कुछ खिलकर मनोहर बोला।

\+ \+ \+

स्टेशन इलाहाबाद के बाद दो तीन स्टेशन और छुट जाने पर मनोहर ने बोलना आरम्भ किया

'होली ही तो है न आपका नाम ?"

"जी हाँ।"

"आप को मैने एक दिन बगल में कुछ किताबें दबाए कही जाते देखा था। क्या आप कहीं पढती हैं ?"

"जी हाँ। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मे बी० ए० फर्स्ट इयर में।'

"अच्छा ! मैं भी तो वहीं बी० ए० फाइनल मे पढ़ता हूँ।'

'कौन कौन से सब्जेक्ट्स आपने आफर किए हैं ?"

"मैंने तो यही सब्जेक्ट्स ले रक्खे हैं—इङ्गलिश, पोलिटिक्स और ज्योग्रफी।"

आश्चर्यान्वित होकर होली बोली 'अच्छा ! तब तो आपके और मेरे दो सब्जेक्ट्स मिलते हैं। सिर्फ ज्योग्रफी के बजाय मैंने हिसट्री ले रखी है।"

(२)

बी० ए० पास करके मनोहर एल टी० की ट्रेनिङ्ग लेने लगा और होली फाइनल में आ गई।

मनोहर कमरे में बैठा ज्योग्रफी की एक पुस्तक खोले बैठा था। उसमें का एक लब्ज समझ में न आया तो आलमारी में से डिक्शनरी

निकालने लगा। इतने में ही होली वहाँ आ पहुँची। कहने लगी, 'मिस्टर मनोहर!'

मनोहर ने चौंक कर जो गर्दन घुमाई तो सामने पाया होली को..। दो दिल मिल कर एक हो गए।

"जरा अपनी ज्योग्रफी की पुस्तक जो दुबे की है दे दीजिए। मेरी एक सहेली को जरा जरूरत पड़ गई। वह मेरे पास आई हुई है। उसने कहा कि कोई पास-पड़ोस में रहता हो तो उससे दिला दो। मैं भी आपके पास दौड़ी आई। पिछले वर्ष की किताबे तो आपके पास होगी ही ?'

मनोहर ने ढूंढ-ढाढ कर पुस्तक ला दी।

\+ + +

जान-पहचान तो पहिले ही हो गई थी। अब आना-जाना भी शुरू हुआ। दोनों की घनिष्टता बढती ही गई। दोनों एक दूसरे के बहुत समीप आ गये। उनके मिलने-जुलने ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया था। दोनों को एक दूसरे को देखे बिना चैन न पड़ती।

शहर में हैजा फैला। इस भयङ्कर रोग ने गार्ड साइब कोभी ग्रसा। मनहोर एल० टी० कालेज जाने के लिए कपड़े पहन रहा था। होली उसके पास पहुँचीं और घबडाहट के साथ कहने लगी' "मिस्टर मनोहर! जरा एक काम करने की तकलीफ उठाइयेगा ?"

'कहिए कहिए।"

"आपको देर हो जायगी!"

'आप मेरी देर की पर्वाह न कीजिए।"

"पापा पेट के दर्द के मारे, बहुत जोर जोर से चिल्ला रहे हैं। खानसामा जरा घर पर है नहीं। अगर आप पुराने कटरे से डाक्टर बाब (Dr Bobb) को बुला दे तो बड़ी मेहरबानी होगी।"

"अच्छा अभी लो। बस इतना-सा ही काम है। इसी के लिये आप. .....''इतने में ही एक चीख फिर सुनाई दी। होली अपने घर मे चलीं गई और मनोहर डाक्टर कों बुलाने चला गया।

\+ + +

"मनोहर बाबू ! आप एक निहायत शरीफ आदमी हैं। आपने मेरे लिए दो दिन की छुट्टी ली पेट सुहलाते हैं, दवा पिलाते हैं, मैं किसे मुँह से आपको थैंक्से दूँ।"

भर्राती हुई आवाज थी वह मेसी साहब की !

"पर देखिए तो मैं दो-ढाई दिन में ही कितना कमजोर हो गया" गार्ड साहिब ने पुनः मुख खोला।

औक औ औ अऔ औक उन्हें फिर क़ै हुई। आँखों की पुतलियाँ लौटने लगीं। होली भयभीत-सी एक ओर को खड़ी थी।

\+ \+ \+

गार्ड साहिब की मृत्यु का समाचार होली ने किसी रिश्तेदार को न भेजा।

दोनों का आज नतीजा आया था। दोनों इसकी ख़ुशी में साथ-साथ 'क़िस्मत' देखने गये।

महान् आश्चर्य हुआ दुनिया वालों को तब, जब उन्होंने सुना कि मनोहर और होली ने चुपचाप 'सिविल मैरिज ऐक्ट' के अनुसार शादी कर ली।

\+ \+ \+

(३)

बहुत कुछ कोशिश करने पर भी मनोहर को अच्छा वेतन देने वाली मास्टरी न मिल सकी। वह दिल्ली में जी० एच० क्यू० में सर्व करने लगा।

मनोहर ने एक ईसाई लड़की के साथ शादी करने के भय से अपने पिता को जो लखनऊ में थे, कोई पत्र न लिखा था। पिता को भी जब मालूम हुआ कि जिस—एजुकेशन के डर से उन्होंने मनोहर को अपने पास न रख कर इलाहाबाद में पढाया था ...। उन्होंने भी पुत्र से नाता तोड़ दिया था।

होली चाँदनी चौक की एक दूकान पर खड़ी-साडी पसन्द कर रही

थी कि अचानक वहीं पर बैठे एक नवयुवक को देख कर चौंक उठी, "ओह ! तुम यहाँ कहाँ ।"

"और तुम यहाँ कैसे ?"

"पहले तुम्हीं बताओ ।" कहकर होली ने उस नौजवान का परिचय मनोहर से कराया, "ये मि० ब्रेव इलाहाबाद मे क्रिश्चयन कालिज मे इन्टरमीजियट तक मेरे साथ पढे थे ।"

" तो ये आपके पुराने सहपाठी हैं" कहते हुए मनोहर ने टामी से हाथ मिलाया । ब्रेव बोला, "जब मेरे फादर का तबादला अम्बाले को हो गया तो उन्होंने मुझे यहाँ यूनिवर्सिटी मे भेज दिया । इस साल एम० ए० का फाइनल है ।"

"अच्छा अच्छा ! माफ करना । इस वक्त तो जल्दी में हूँ पर कल की तुम्हारी टी-पार्टी रही । देखो १३, फतहपुरी पर आ जाना शाम के ठीक ६॥ बजे आना जरूर !" ब्रेव होली की ओर देखता रह गया ।

× × ×

अक्सर ब्रेव मनोहर के घर आकर उन दोनों प्राणियों का जी बहलाता । ब्रेव होली का पुराना प्रेमी था ।

(४)

आज मनोहर के विवाह को दो वर्ष हुए । मनोहर बहुत-बहुत खुश होता हुआ विवाह की सालगिरह की बात सोचता हुआ दफ्तर से लौट रहा था । रास्ते में ५) की मिठाई लेता चला । घर आकर होली को उस कमरे मे न पाया तो खानसामा से पूछा

"मेम साहिबा कहाँ गई हैं ?"

"हुजूर वह बाबू जो कई बार टी-पार्टी मे आए थे, वही आज भी पधारे थे । उन्हीं के साथ मेम साहिबा कहीं तशरीफ़ ले गई हैं । कुछ कह नहीं गई ।"

माथा ठोंककर मनोहर एक कोच पर बैठ गया । इन्तज़ार करने लगा ।

१ दिन, २ दिन, १ हफ्ता, महीना...।

× × ×

आजकल मनोहर आगरे के पागलखाने मे है ।

७—एक घटना

वे भी दिन थे साढे आठ वर्ष की मेरी अवस्था थी। मेरी माता बहुत बीमार थी। डाक्टरों ने पहाड़ पर ले जाने की सलाह दी। और मैं, मेरे माता-पिता, मेरे छोटे-भाई-बहिन और मेरी दादी—ये सब कनखल पहुँचे मेरे एक छोटी बहिन थी और उससे छोटा एक भय्या।

कनखल को अलग हम एक छोटा कस्बा कहें तो अनुचित न होगा यह हरिद्वार के बिल्कुल पास ही है। हम लोगों ने वहाँ जाकर (एक जगह जिसका नाम मुझे याद नहीं) दो कमरे लिए और रहने लगे। वहाँ के एक सुप्रसिद्ध वैद्य का इलाज मेरी माता का होने लगा। हम लोग जहाँ ठहरे थे वहाँ से लगभग २० कदम पर गङ्गा जी बहती थीं! उन्हीं दिनों का जिक्र है यह।

अहा! सामने कलकल करती हुई गगा-मय्या प्रवाहित थी और इधर हम खेलते थे, कभी पेड़ों पर चढते, कभी किसी बाबा-जी की कुटिया में चले जाते और कभी खेलते आँख-मिचौनी। कनखल की गगा में रेत नहीं था। वहाँ तो पत्थर थे। उन्ही पत्थरों पर खड़े होकर हम नहाते थे। कैसा भला लगता था। गगा के निर्मल जल की चञ्चल और तेज धारा होने से हम किनारे पर ही नहाते थे और पत्थर इकट्ठा करते थे। इन पत्थरों में सालिग्राम, ठाकुर जी और शिव जी आदि की होती थीं मूर्तियाँ इसलिये इनको पाकर हम बहुत खुश होते थे। गर्मियों के दिन थे। ठडे पानी में नहाना आनन्द के समुद्र में गोता लगाने जैसा प्रतीत होता था। दिन वे ऐसे थे जिनका चित्र हृदय पटल पर से शायद इस जन्म में तो हटेगा नहीं। खेलते-खेलते हम लोग निकल जाते थे पास के खेतों में उस अनन्त के छोर को पाने की लालाच में। ऊपर आकाश होता था,

नीचे पृथ्वी और बस हम.. । कभी किलकारी मारते, कभी गाते और कभी नाचते-कूदते-उछलते थे ।

सुबह का दृश्य तो बहुत ही आनन्द प्रद होता था । नहाने के लिये लोग आ-आ कर इकट्ठा होते थे, क्योंकि हमारे घर के सामने वाला घाट ही सब से साफ था । नहा-नहा कर कोई 'जय गगे मय्या' की पुकार मचाता, कोई चन्दन लगाता, कोई हनुमान-चालीसा पढता, कोई कुशासन पर बैठ ध्यान लगाता और कोई मत्र-पाठ करता कहीं कोई मौनी बाबा ईशारों से बात करते दिखलाई देते । कोई-कोई मगल-पाठ करते थे । इस घाट पर मछली-कछुओं का तो (जिससे मैं अब भी डरता हूँ) वहाँ नामोनिशान भी न था । तभी तो दिन में ३-३ बार नहाने का साहस करता था । हाँ तो ! कहने का मतलब यह है कि उन दिनो का मजा मजा ही था । शाम को देखते कि चरवाहे गाय-भैंसों को सामने वाले किनारे से हमारी तरफ वाले किनारे पर लाते दिखाई देते ढोर पानी उछालते हुए गगा पार कर लेते थे ।

दोपहर में हम लोग पहाड़ो के दृश्य की शोभा का रसपान करते । चाँदी की तरह सफेद-सफेद चोटियाँ आकाश से बातें करतीं थी । सामने आकाश के उस छितिजपर तो बस पर्वत ही पर्वत दिखाई देते थे । उस जीवन मे जो आह्लाद था, वह अब यहाँ इलाहाबाद जैसे बड़े शहर के एक बङ्गले में रह कर भी नहीं मिलता ।

दोनों कमरों में से एक में तो रसोई खाना था । दादी खाना पकाती थीं । इसी कमरे में एक तरफ नहाने का स्थान बना लिया था । दूसरे कमरे में उठते-बैठते थे दोनों कमरो के बीच में दो गज चौड़ा रास्ता था गृहस्थ लोगों का और कोई घर पास-पड़ोस में नहीं था ।

दोपहर का समय था । हम लोग बैठक के कमरे में बैठे हुए बात-चीत कर रहे थे । इसी बीच में पिताजी ने कहा 'ज़रा एक लोटा पानी ले आओ' । मैं दूसरे कमरे में गया तो क्या देखता हूँ कि पिताजी

ने जो धोती नहाकर सूखने के लिए फैला दी थी वह गायब थी और एक नौजवान महाशय उसे पहने खड़े थे। मैं डर गया। छोटा तो था ही। 'भूत-भूत' चिल्लाता हुआ भागा। पिताजी ने सुना तो क्या है ? क्या है ?' कहते हुए बाहर आए। मुझसे मामला पूछकर वह उस कमरे में घुसे। और वह महाशय जी उस कमरे से भागते हुए निकले और कमरे मे दौड़ आए जहाँ और सब लोग बैठे थे। मेरी माताजी भी उसे देखकर सहम गई और चिल्लाईं। पिताजी इतने मे एक लकड़ी हाथ में लिए हुए आए। तब वह मिस्टर धोती छोड़-छाड़ कर नदारद हो गए।

कुछ दिनों बाद मकान-मालिक के कुछ नातेदार आ गए और हमको घर खाली करना पड़ा। दूसरा घर हम लोगो ने लॅंढौरा के मन्दिर के पास लिया। यह मकान जिस चबूतरे पर बना था वह ऐसी जगह थी जहाँ से स्पर्श करती हुई सुरसरी बहती थी। इस घर में प्राचीन हिन्दू संस्कृति की कुछ-कुछ बू मिलती थी। नित्यप्रति सुबह-शाम कानों में भगवद् चर्चा की ही ध्वनि सुनाई—पडती। लॅंढौरा के मन्दिर के नीचे सीढ़ियाँ बनी थीं और वहाँ पर सुबह के वक्त नहाने वालों का जमघट-सा लग जाता था।

हर्दोई से मेरे छोटे चचा भी आ गए थे। एक दिन मै और चचा जी घूमने गए। वहाँ फिर उसी लड़के को देखा। उसकी उम्र २०-२२ वर्ष की होगी। वह आगे-आगे जा रहा था और पीछे-पीछे थे लडके तालियाँ पीटते हुए। कोई 'पागल राम; पागल राम' कहकर चिल्लाते थे, कोई उसे चोंच दिखाते थे, कोई उस पर ढेला फेकते थे और कोई उसे छेड़ते चलते थे। था वह बिल्कुल नङ्गा। एक लंगोटी भी नहीं थी उसके पास। बावले की तरह वह बौखलाया-सा जा रहा था।

एक दिन फिर वही पागलराम आकर हमारी रसोई के सामने खड़ा हो गया। दादी ने एक रोटी उसकी ओर डाल दी। उसने रोटी के कई

टुकड़े किए। एक को कान में टूँसने लगा दूसरे को नाक में, तीसरे को बन्द की हुई आँख में और ।

शाम को मन्दिर से प्रसाद पाकर लौटे थे और छोटे भय्या के लिए दस्तों की दवा लेने जा रहे थे तो वही पागल दिखाई दिया। आज वह एक कुत्ते को लिए बैठा था। बार बार उस कुत्ते के मुँह में अपना हाथ डाल देता था। जब कुत्ता उसे काट खाता तो वह हसता था। एक बार कुत्ते ने उसकी एक अगुली बिल्कुल पिच्चा कर दी और उसको इतनी खुशी हुई कि वह उछल-उछल कर नाचने-कूदने लगा। उधर से एक लड़का हाथ में दूध लिए आ रहा था। आप दौड़े दौड़े गए और उसके हाथ से सारा दूध छीनकर पी गए। लड़का रोता हुआ घर गया। कुछ क्षण पश्चात् देखा कि उस लड़के के पिता लाठी लिए हुए आए। तड़ातड़ दो लाठियाँ पागल पर जमाई। पर वह पागल भी अजीब पागल था। बोलना वो मानो जानता ही न था। मार खाकर वह तो ठहाका दे-दे कर हसने लगा। हमको यकीन हो गया कि इसके दिमाग में जरूर कोई न कोई खराबी है। या शायद उसके दिल पर किसी विशेष घटना से ठेस लगी हो। कुछ भी हो, हम हसी के बल लोटते-पोटते काम पर गए। चचा जी मेरे साथ थे। कहने लगे, "ऐसा पागल हमने पहली बार देखा। वैसे किसी दूसरे पागल से कुछ छेड़-खानी कर दो तो वह गाली दे बैठेगा और ईंट-पत्थर मारना शुरू कर देगा और कभी कभी तो कसके चिपट जायगा।"

हाय ! अफसोस कि उन्हीं दिनों मेरा छोटा भाई हम सब को बिलखता छोड़कर चल बसा। हम लोगो का भी वहाँ जी नहीं लग रहा था। पिताजी ने तय किया था कि अब मेरी माता जी का इलाज लखनऊ चलकर किया जाय।

लखनऊ जाने से एक दिन पहले की बात है कि हम लोग शाम को चबूतरे पर बैठे हुए गङ्गा जी की निरन्तर बहने वाली धारा का रस लूट रहे थे। कुछ मछलियाँ किनारे पर थीं। हम लोग आटे की

गोलियाँ बना-बना कर उन मछलियों को खिला रहे थे। इतने में ही वह नङ्गा पागल वहाँ आया और ४ गज़ ऊंचे चबूतरे से एकदम कूद गया और लगा पानी में खेल करने। पिताजी घर में उठकर गए और एक फटा लंगोट लाकर उसके ऊपर डाल दिया। पागल ने उसे हाथ में पकड़ा, ऊपर आया और पहन लिया। फिर कूदा और पानी में जाकर उसने लंगोट खोल कर बहा दिया। न जाने क्यों ? तभी कुछ लोफ़र लड़के वहाँ आए और उस पर लकड़ियाँ ढेले-पत्थर वग़ैरह फेंकने लगे। अब तो पागलराम पानी में से निकले और पास के एक दूसरे मन्दिर में घुस गए। वहाँ एक मूर्ति पर जाकर बैठ गए। मन्दिर के पुजारी लोगों ने यह देखा तो चिल्ला कर उस पर दौड़े और उसे भगा दिया। अब हमारे पड़ोसी साहब पर नौबत आई। पागल उनके घर में घुस गया। घड़े में लात मारी, लोटा उठाकर पटका खाट तोड़ दी, जितनी देर में पड़ोसी जी डंडा लेकर आए इतने में पागल रफूचक्कर हो गया।

फिर वही बात। दूसरे दिन वह खड़ा खड़ा सो रहा था। हम लोग हंस रहे थे। इस बात की हम लोगों में बड़ी जिज्ञासा थी कि यह ऐसा क्यों करता है।

पिताजी ने मन्दिर के एक पुजारी से प्रश्न किया, "यह पागल कब से हुआ ?"

उत्तर मिला, "साहब ! वैसे तो यह है एक जमीदार का अमीर लड़का। पर यह उसी दिन से पागल हो गया है जिस दिन से इसकी बीबी एक मुसलमान के साथ भाग गई।

८—माँग का सिंदूर

घर-र-र ! एक चीत्कार सा करता हुआ सेन्टल जेल का फाटक खुल गया। संतरी ने अपनी बन्दूक एक बार फिर ठीक से पकड़ ली जैसे फाटक खुलने पर उसे इसकी आवश्यकता ही पड़ेगी। इतने दिनों तक इन दीवारों के भीतर रहने का मोह जैसे हो गया हो, पैर उठ ही नहीं रहे थे। सो महेशचन्द्र बाहर की ओर धीरे-धीरे बढ रहा था। फाटक से बाहर आकर उसने एक बार लाल ईंटों की चुनी हुई इन दीवारों को देखा, फिर एक मुस्कान के साथ एटेन्शन खड़े सतरी पर दृष्टि डाली और चल पड़ा बाहर की ओर !

सड़क की ओर से आती हुई हवा का झोंका उसके मस्तक पर लगा तो उसे प्रतीत हुआ जैसे वर्षों से उसने हवा का अनुभव ही न किया हो। आँखें सजल हो उठीं। वाह्य-जगत के प्रति उसका सुप्त मोह जैसे जाग्रत हो उठा। अपने परिचितों को देखने के लिए वह लालायित हो उठा, परन्तु वहाँ तक पहुँचने में तो अभी बहुत देर है ! अपने शहर से सैकड़ों मील दूर पूरे चौबीस महीने तक वह यहाँ बन्दी रहा है। ओह, यह बन्दी जीवन ! आज वह कितना स्वतन्त्र है। उसने अपने कपड़ों की ओर देखा। जिस समय वह जेल में लाया गया था, यही कपड़े उसके सर पर थे, और आज फिर उसे यह कपड़े वापस कर दिये गये हैं। जेल के अधिकारियों को इन कपड़ों को सुरक्षित रखने में कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। फिर सभी के सामान जो उन्हें रखने पड़ते हैं ! जेब में उसके थोड़ी-सी पूँजी है जो जेल के अधिकारियों ने उसे दी है। एक बार जेब में हाथ डाल कर उसने सिक्कों को हिलाया, फिर गम्भीर हो उठा।

सड़क आ गई थी और वह धीरे-धीरे चल रहा था जैसे आज भी

जेल के आँगन में हो जहाँ इक्के मोटर से दबने का उसे भय नहीं। इक्के वाले ने पीछे से पुकारा—एक तरफ़, बाबू जी एक तरफ़ !

महेशचन्द्र ने मुड़ कर पीछे की ओर देखा जैसे उसे परिवर्तन का ज्ञान हो गया हो, कुछ सुध आ गई हो, एक किनारे हो कर बोला—स्टेशन चलोगे ?

"हाँ बाबूजी, चलूँगा क्यों नहीं !" इक्के वाले ने उत्तर दिया।

महेशचन्द्र बैठ गया और इक्का स्टेशन की ओर बढ़ चला।

इलाहाबाद गाड़ी तैयार थी, महेशचन्द्र ने टिकट लिया और एक डिब्बे में जाकर कोने में खिड़की के निटक बैठ गया। यात्री बाते कर रहे थे, सिगरेट-बीड़ी धुएँ से सारा डिब्बा भर गया था। बाहर खोनचे वालों और पान-सिगरेट वालों के शोर में वातावरण जैसे काँप रहा था, पर महेशचन्द्र को जैसे इन सब बातों का पता भी नहीं। वह स्थिर था, जैसे उसके हृदय में स्पन्दन न हो रहा हो। उसके मस्तिष्क मे विचारों का सागर लहरे ले रहा था। दो वर्ष पुरानी घटनाएं उभर कर आखों के सामने छा रही थीं।

ट्रेन चली, स्टेशन पीछे छूट गया, ट्रेन की गति में तीव्रता आई पर महेशचन्द्र के विचारों से वह होड़ न ले सकी। वह कर्नलगंज में रहता है। उसके पिता बाबू श्यामलाल और दयाशङ्कर में बड़ी मित्रता है। दयाशङ्कर बाबू को वह चाचा कहता था। वे लूकरगंज में रहते हैं पर बचपन से महेशचन्द्र का अधिकाश समय उन्हीं के यहाँ व्यतीत होता था। और मालती महेशचन्द्र को लगा जैसे उसका एक दर्द उभर आया हो। उसे वह कितना प्यार करता है। बचपन से ही वह उसके साथ खेलता आ रहा है और जीवन भर खेलेगा। जब वह छोटा था तब भी वह पिता और चाचा को बाते करता सुनता था। ये कहते थे महेशचन्द्र और मालती को विवाहसूत्र में बाँध कर हम अपनी मित्रता को और घनिष्ट बना देंगे।"

और फिर जब उन्होंने यौवन में प्रवेश किया तो दोनों का विवाह

भी तय हो गया। उसी बीच राजनीतिक क्षेत्र में एक लहर-सी आई। आन्दोलन शुरू हो गया। महेशचन्द्र अपने यौवन के उछलते जोश को कैसे रोकता! वह गिरफ्तार हो गया। फिर दो वर्ष की जेल!

और वह आज रास्ते भर सोचता आ रहा था कि कैसे उसे मिलूँगा। अरे मिल तो सकता नहीं। ब्याह जो तय हो गया है। तो फिर क्या पत्र लिख कर उसका हाल पूछूँगा। अथवा नौकर को भेजना उचित होगा? नहीं-नहीं, वह धीरे-धीरे किसी तरह पता लगा ही लेगा। मेरे आने की सूचना पा कर चाचा जी मेरे घर पर आवेंगे ही! तब उन्हीं से सब पता लग जायगा। उसकी आँखों के सामने मालती यथार्थ हो जैसे खड़ी हो। ट्रेन की गति से पीछे भागते पेड़ जैसे मालती बन कर पीछे भाग रहे हों। एक बार वह काँप उठा! नहीं, मालती उससे दूर नहीं जा सकती।

"महेश आ गया, महेश आ गया" कहते हुए माता-पिता पुत्र से चिपट कर रोने लगे। फिर किसी तरह चुप हुए, तो महेश पर तो प्रश्नों की झड़ी सी लग गई। कैसे रहे? क्या खाते थे? क्या पीते थे? क्या-क्या तकलीफें थीं? कैसे सोते थे?

महेशचन्द्र प्रश्नों का उत्तर देता जाता था परन्तु ध्यान उसका कहीं और था। कभी उसकी मुद्रा गम्भीर हो जाती किन्तु फिर वह हस हंस कर जेल के अनुभव सुनाने लगता।

उसका आना सुन कर मुहल्ले-पड़ोस के लोग भी इकट्ठे हो गये थे।

दिन इसी प्रकार बीत गया। आने जाने वालों से उसे अवकाश ही न मिला। पर दया चाचा नहीं आये; उन्हें अभी उसके आने का समाचार भी ती मिला होगा। सोचा, चलो इसी बहाने उनके यहाँ चलूं। ज़रूर ही वहाँ मालती को देख सकूंगा।

एक सफ़ेद कुर्ता और धोती पहने, चप्पल पैर में डाल वह लूकरगञ्ज की ओर चल पड़ा। उसका हृदय जैसे उछल रहा था।

बङ्गले के फाटक में प्रवेश किया था कि माली मिल गया। बहुत दिन से वह दया चाचा के यहाँ है, पर इन वर्षों में वह कितना बूढ़ा हो

गया है। महेशचन्द्र को जैसे उसने पहचाना नहीं, बोला—बाबू जी बाहर गये हैं।

क्षण भर वह सोचता खड़ा रहा क्या लौट चलें। तभी आँखे उठा कर देखा।

सामने मालती खड़ी थी। तो क्या उसके आने का समाचार उसे मिल गया था जो उसकी प्रतीक्षा कर रही है? कितनी कुम्हला गई है—न मालूम कितने दिन उसने खाया न होगा। न जाने कितनी राते उसने जग-जग कर काटी होंगी।

क्षण भर उसी प्रकार वह देखता रहा। फिर अपने आप उसके पैर आगे बढ़ने लगे। पोर्टिको के निकट पहुँच कर एक बार वह फिर ठहर गया। मालती उसकी ओर अनिमेष निहार रही थी। सहसा उसने जैसे पहचान लिया हो। आंखें नीची हुईं तो सिर झुक गया और फिर वह लड़खड़ाते पैर भीतर चली गई।

मालती की ओर महेशचन्द्र एक टक देख रहा था। उसने सिर झुकाया तो उसके बालों में महेशचन्द्र के अरमानों के रक्त से रङ्गी वह सिन्दूर-रेख चमक उठी। महेशचन्द्र को लगा जैसे इस लाल रेखा को दिखाने के लिए ही उसने एक बार सिर झुका दिया था!

और महेशचन्द्र लौट पड़ा, सड़क पर एक ओर को वह चल दिया। कहाँ? उसे इसका स्वयँ ज्ञान नहीं।

६—अन्याय

समस्त संसार अपने-अपने कार्य में निमग्न था। निठल्ला था केवल एक प्राणी—वह थी प्रेम। वह आगरा विश्व-विद्यालय की एक कुशल छात्रा थी। दूसरे दिन और खुलकर यूनीवर्सिटी दशहरे की छुट्टियों में बन्द होने वाली थी। उसके चेहरे पर किसी विचार-धारा में संलग्न होने के भाव प्रकट थे। वह छुट्टियाँ बिताने के लिए प्लान्स सोच रही थी। सामने मेज पर पुस्तकें पड़ी हुई थीं। अचानक वह उठी और बोर्डिंग हाउस के कमरे की खिड़की खोलकर बाहर की ओर प्रकृति की हरित शोभा निहारने लगी। बड़ा भारी लॉन था। पुष्प विकसित थे। क्वार की चतुर्दशी थी! रविवार का दिन था। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। बादल गरज रहे थे। बिजली कड़क रही थी। दृश्य अत्यन्त नयनाभिराम था। कुछ क्षण के लिए प्रेम को शान्ति मिली।

इतने में अचानक सामने का बन्द दरवाज़ा खुल गया। प्रेम की विचारतन्द्रा भग्न हुई। उसने किवाड़ों की तरफ देखा। एक नवयुवक आ घुसा। प्रेम बहुत आश्चर्यान्वित हुई। प्रेम ने हेम को पहचाना। हेम भी उसी यूनिवर्सिटी का विद्यार्थी था। गौरवर्ण, स्वस्थ शरीर, हँस-मुख चेहरा, यौवन से दमदमाता भाल। प्रेम को देखकर हेम मुस्कराया। किन्तु यह मुस्कराहट कृत्रिम थी। प्रेम कुछ भी न समझी अपितु डर गई। बोली—"हेम इस समय मेरे एकान्त कमरे में तुम क्यों आए हो? सारी दुनिया अपने अपने काम में लगी है। तुमने ऐसा कैसे किया। किस आपत्ति ने तुमको ग्रसा है? शीघ्र उत्तर दो।"

दैवयोग से हेम की मुस्कराहट अन्तर्धान हो गई। नयनों में जल आ गया। लम्बी साँस लेकर बोला—"प्रेम! मैं जानता हूँ कि इस वक्त सारा जगत काम में लगा है। परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी करने

घरने को नहीं। मेरा आराम, सब—यहाँ तक कि शान्ति भी प्रेम रूपी नदी में बह गई। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। आज से महीनों पहले मैं तुम्हें हृदयेश्वरी मान चुका हूँ तुम मेरी प्रियतमा हो। मैंने प्रयत्न किया कि मेरा प्रेम सोता रहे; मरा रहे, किन्तु अब मैं ऐसा नहीं कर सकता। यूनिवर्सिटी में, बोर्डिंग में पार्क में सड़क पर, पढ़ते समय—भी तुम मेरी आँखों से ओझल नहीं होती। पहले मैं समझा कि यह मेरे हृदय की कमजोरी है, तथा मन की बेकार भावना है। इसको वश में करना चाहा परन्तु अब मुझे प्रतीत होता है कि यह पुकार आत्मा की है और उसी सच्चे दिल की आह है। अन्त में तो मैं एक पुरुष ही ठहरा प्रेम! आज, सहसा इस अग्नि ने भयङ्कर रूप धारण कर रक्खा है। मै आया हूँ तुम्हारे पास—एक सहपाठी की भाँति नही, एक प्रेम-भिखारी की तरह। मुझे निराश मत करना।

शीघ्र ही हेम सब कह गया। प्रेम वज्रहृदया के समान नीची निगाह किये हुए चुपचाप हाथ बाँधे खड़ी रही। वह थी हेम के सामने। उसके सामने एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई। कुछ निश्चित न कर सकी। हेम के वचनों ने प्रेम के हृदय पर—कोमल हृदय पर धक्का दिया। प्रेम पढ़ने लिखने के अतिरिक्त और कुछ न जानती थी। उसने बीते हुए जीवन पर दृष्टिपात किया। वह पूर्णतया शुद्ध था। कहीं तजुर्बा नहीं—सिर्फ़ काल्पनिक तार था—पुस्तकों का नीरस संसार था। यह दशा थी उसकी जवानी की। उसके शरीर भर में मानों बिजली दौड़ गई। वह तिलमिला उठी।

हेम फिर बोला—"प्रेम, शान्त क्यों हो? क्या विचार है? प्रणय की भिक्षा दो। मुझें प्रणय-पिपासा सता रही है। पूरी कर दो मेरी इच्छा। मैं खूब अच्छी प्रकार जानता हूँ कि तुम्हारे बिना मेरा कोई अस्तित्व नही! मेरा जीवन एक बोझ हो गया है। मुझे मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। प्रेम या मौत—कहो, कुछ कहो, तुम मुझे क्या दोगी? अगर तुम मेरी आशा को नष्ट कर डालोगी तो मैं आत्म-हत्या कर डालूँगा!

मेरे पास कटार है। इधर देखो, और जवाब दो—तुम्हारी बोल पर ही मेरी जिन्दगी निर्भर है!"

और सचमुच ही कमर से उसने चमचमाती कटार निकाल ली।

"कटार!"

प्रेम बुत बनी हुई थी। हेम ने कटार सम्हाली।

"मैं समझ गया। तुम मुझे प्रणय-दान न दोगी। अच्छा हत्या तो तुम्हें ही लगेगी। मैं आत्मघात करके तुम्हारे सामने मरा जाता हूँ। इधर देखो।"

वास्तव में चमकती कटार हेम के उदर से खेल करने लगी। केवल अन्दर जाने की देर थी। प्रेम को मानो किसी ने बलपूर्वक जगा दिया हो।

"हेम!' चिल्लाई। उसकी आवज में दर्द था, हमदर्दी थी, दिल की पुकार थी। "मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

"सचमुच?" हेम के हाथ से कटार छूटकर फ़र्श पर गिर पड़ी। उसके नेत्रों में अश्रुधारा एवं अधरों पर हंसी थी!—"क्या वस्तुतः तुम मुझे प्रणय-दान कर रही हो? बोलो-बोलो प्रेम! षडयन्त्र न रचो, ठीक-ठीक बताओ!"

"हेम! सच कहती हूँ, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुमने मेरी सोई हुई भावनाओं को जागृत कर दिया है। तुम्हीं ने मुझे प्रेम करने की शिक्षा दी है। तुम मेरे हृदय मन्दिर के देवता हो, प्रियतम—सब कुछ हो। मैं तुम्हारी हूँ।"

प्रेम ने बेकली भरे दिल से कहा—"मेरा प्रेम, तुम्हारे प्रति, अटल, स्थिर तथा सनातन रहेगा!"

प्रेम ने प्रण किया। हेम ने प्रेम में व्याकुल होकर प्रेम को बाहुपाश में बाँध लिया। दोनों के गर्म हृदय एक हो गये। आलिङ्गन से दोनों की तृप्त आखें बन्द हो गईं। एक नवीन तथा विचित्र आनन्द का अनुभव उन्हें हुआ। वे असावधान हो गए, गिर पड़े··· ······होश आया।

दोनों शान्त न थे। परन्तु यह अजीब प्रकार की अशान्ति थी। इसमें तजुर्बा था दर्द था, चाह थी,—किन्तु सभी छिन्न-भिन्न ! सभी अस्त-व्यस्त !

हेम ने दशहरे की छुट्टियों को प्रेम के साथ बिताने का निश्चय कर लिया था। प्रेम को कोई आपत्ति नही थी इसमें। दशहरे की छुट्टियाँ थीं: तय हुआ कि कलकत्ता चलें। हिन्दुस्तान की प्राचीन राजधानी में पहुँचे दोनों !

सन्ध्या थी। भीनी २ हवा चल रही थी। भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे ! आकाश में लाली थी। होटल के कमरे में हेम और प्रेम एक साथ भोजन कर रहे थे। बीच २ में बोलते भी जाते थे। कभी २ खिलखिला कर हस भी पड़ते थे। इतने में पोस्टमैन ने आकर दोनों के हाथ मे एक-एक पत्र थमा दिया जिनको पढ़कर दोनों की मुद्रा गम्भीर हो गई। पढ़ते समय कौतूहल था, परन्तु बाद मे उदासी, पोस्टमैन चला गया। प्रेम ने हेम से पूछा—'क्या लिखा है हेम ?"

"पिता जी ने मुझे बुलाया है। मेरा विवाह कुसुमलता से होना निश्चित हुआ है !" हेम बोला।

"मेरा पाणिग्रहण संस्कार भी शारदा-चरण के पुत्र योगेश बाबू से ठीक किया गया है। माता जी ने मुझे भी बुलाया है !" प्रेम बोली।

दोनो पत्र समभावी थे। दोनों के हृदय क्षुभित थे। विरह न सहने योग्य था।

हेम ने नम्रतापूर्वक कहा-प्रेम मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता। मै तुम्हारे प्यार को अलग मान कर असीम और अपार प्रेम समुद्र में कूद पड़ा हूँ। हम दोनों एक दूसरे को सच्चे दिल से प्रेम करते हैं। परमात्मा करे, हम दोनों परस्पर दम्पति बनकर रहें। मेरे पिताजी मेरी बात अवश्य मान लेंगे। बस तुम्हारे 'हाँ' कह देने भर की देर है !"

"हेम, मैं तुम्हें कदापि नहीं छोड़ सकती। तुमने मुझे प्रेम के बन्धन में बांध लिया है। अपने पिता जी को लिख दो कि वे तुम्हारी शादी की

फिक्र न करे। इसके बाद घर जाकर उन्हे समझा भी आओ। मैं भी माता जी के द्वारा पिता जी से कहलवा दूंगी कि मेरा विवाह हो तो तुम्हीं से हो !'

वार्तालाप ने काफी समय ले लिया था। आज ये घूमने न जा सके। इस समय तक रजनी देवी का साम्राज्य सर्वत्र हो चुका था। दोनों अपने २ विस्तरों पर लेटे हुये थे। प्रेम गम्भीर थी। उसे नींद न आती थी। विवाह के प्रश्न पर वह चिन्तित होकर सोचने लगी।

उसका मन भाँति २ के भावों से परिपूर्ण था। कभी उसके मन में ख्याल आता—हेम शिक्षित है। धनी है। प्रेमी और रसिक-सभी कुछ है। इसी से शादी करना ठीक रहेगा। साथ ही साथ प्रण का भी विचार आता। वायदा ! कुछ ही देर बाद वह कुछ और विचारों का शिकार बन जाती। विचारती—शिक्षित लड़कों का क्या ठिकाना। अपने मतलब के लिए सैकड़ों तरह की बाते बना सकते हैं। हेम आज मुझ पर जान देता है, सम्भव है कल किसी दूसरी से दिल का सौदा कर बैठे। दूसरे पिता जी का कठिन आदेश.....!

आत्मा धिक्कारती—"छिः छिः प्रेम तुम इतनी अधिक कमीनी हो। अब तक जिस हेम को तुमने अपने प्रेमरूपी बाण का लक्ष्य बना रक्खा था, आज उसी को छोड़ना चाहती हो। उस भोले पुरुष के दिल को दुखाना चाहती हो। यदि यही करना था, तो पहले प्रतिज्ञा क्यों की थी। हेम तुम्हें प्यार करता है, तुम भी उसे प्यार करती हो। तुम दोनों के प्रेम-ससार में किसी तीसरे को आने का क्या अधिकार है। नीच विचारों का दमन करो। हेम के साथ विवाह कर डालो।"

तुरन्त ही दूसरी धारणा आ दबोचती—"प्रेम, तुम किस चक्कर में हो नगरों के लड़कों का विश्वास ही क्या। लड़कों का प्रेम तो फूल के समान है। जिस ओर हवा बहेगी, उसी ओर उसकी खुशबू भी जायगी। तुम नारी हो, तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता है—कम से कम अभी तक

तो। एक पुष्प का रस ले लेने के पश्चात् यदि दूसरे का भी ले लिया जाय, तो हर्ज की बात नहीं।"

प्रेम किसी निश्चय पर न आ सकी। यौवन कठिन है—जहँ ठाढे तह सोच। फिर भी, न मालूम क्यों जाना कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया गया। दोनों ने अपने २ माता-पिता को लिख दिया कि अभी ऐसी क्या शीघ्रता है। समय आने पर देखा जायगा।

(३)

हेम का मनोरथ एक उठते हुए तूफ़ान की तरह था। यूनिवर्सिटी खुल चुकी थी। दोनों आगरा लौट आए। दोनों उन्मत्त प्राणी वासना के समुद्र में तैरकर सुख का स्वप्न देखते थे।

प्रणय से ही वासना की उत्पत्ति होती है। तब भी दोनों में पृथ्वी और आकाश का सा अन्तर है। प्रेम में सब्र है' परन्तु वासना में हमेशा सुलगती हुई आग। प्रेम वासना की मदिरा पीते २ भी न अघाती थी। वह सदैव अपनी इच्छा को अतृप्त ही देखती थी।

दोनों एम० ए० पास करके अपने २ घर गए। जाते समय उन्हें विचित्र प्रकार के दुःख का अनुभव हुआ था।

×   ×

हेम बैठा हुआ अखबार पढ रहा था। इतने में डाकिया आकर एक सुन्दर-सा लिफ़ाफा उसके हाथ में रखकर चला गया। कुछ देर तक हेम निस्तब्ध रहा। फिर धड़-कते हृदय से पत्र खोला। पता देखते ही यह तो वह पहिले ही जान गया कि पत्र प्रेम का था। फिर भी जब वह उसे पढ रहा था—तो उसका दिल जोरों के साथ धक्-धक् कर रहा था। उसमें लिखा था—

हेम, तुम मेरे हो। मैं तुम्हारी हूँ! मैं एक भारतीय नारी हूँ। जिसको एक बार पतिरूप में मान चुकी उसे बदल नहीं सकती। किन्तु हमारे लिए विधाता टेढ़ा है। २१ जून को मेरी शादी होनी निश्चित हुई है। कृपा करके १६ तारीख को मुझसे कम्पनी बाग़ में मिलो।

फिर हम-तुम चलें दुनिया के एक ऐसे छोर पर जहाँ प्रेम और हेम के सिवा और कोई न हो। इति,—

तुम्हारी ही

'प्रेम'।

नितय समय पर हेम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। पर किसी से मालूम हुआ कि विवाह तो १० दिन पूर्व ही हो चुका।

प्रेम ने गर्भनाशक औषधि का प्रयोग किया था।

हेम रेल की पटरी के नीचे कट मरा।

१०–गाँव वालों के साथ या अस्मत

जिलेदार बाबू धर्मदत्त बेत की कुर्सी पर बैठे २ सिगरेट के कश पर कश खींच रहे थे। सिगरेट तो मानों उनकी चिरि सङ्गिनी थी। इस कन्ट्रोल के जमाने में भी दिन में कम से कम चार पैकेट पी डालना तो उनके लिए एक मामूली सी बात थी। हाँ तो जिलेदार साहिब आराम से कुर्सी पर ढाई मन के शरीर का बोझ रखे हुए सिगरेट का मजा ले रहे थे आज जब कि बीबी जी से उनका झगडा हो गया था और जिलेदारनी साहिबा ने उन्हें खाना देने से इन्कार कर दिया था, तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि आज तो वे सिगरेटों से ही अपना पेट भरेंगे। तीसरा पैकेट खोला ही था कि उनके श्वसुर बाबू जुगल-किशोर आते दिखाई दिए। और देखते ही देखते उनकी बैठक में प्रवेश करके उनके सामने की एक कुर्सी खींचकर उस पर विराजमान हो गए। बाबू जुगल किशोर और बाबू धर्मदत्त दोनों ही प्रयाग में रहते थे। जिलेदार साहिब का मकान था बेली में और बाबू जुगलकिशोर का सिविल लाइन्स में। बाबू जुगलकिशोर कलक्ट्री के एक क्लर्क थे। आज अचानक ही उनके आने से जिलेदार साहिब को अचम्भा हुआ और दुआसलाम होने के बाद उन्होंने पूछा, "कहिए! कैसे आना हुआ?"

वह बोले, "भाई धर्मदत्त क्या बतावें। बात तो छोटी सी ही है, लेकिन... ."

जिलेदार साहिब ने पूछा, "कहिए कहिए। रुक क्यों गए। कह डालिए। आपका हुक्म भला मैंने कभी टाला है। जो कुछ मुझसे करते बनेगा, मैं अवश्य करूँगा। आखिर. मालूम तो हो कि मामला क्या है।"

"अच्छा भई, तो सुनो! हुसैनी को तो तुम जानते होगे। वही जो

रोज़ मुझे अपने इक्के पर बैठाकर दफ्तर ले जाता है। इफ्तिखार का बाप न ! तो उसी का एक मामला फसा है। पहले तो तुम सच्चा सच्चा किस्सा सुनो। मेंहदौरी गाँव का नाम तो सुना होगा और तुम वहाँ गए भी होगे, क्योंकि वह तो आजकल तुम्हारे ही हल्के में है। वहाँ के दारोगा सिराजुद्दीन साहब के यहाँ एक विधवा मालिन की फुल्लो नाम की लड़की रोज़ फूल व मालाएँ देने जाया करती थी। फुल्लो की उम्र यही होगी कोई सोल-सत्रह साल की। अब भई तुम जानो चढती हुई जवानी और वह भी चाँद से मुखड़े पर ! किसी तरह एक दिन इफ्तिखार की निगाह भी उस पर पड़ी। और अभी एक ही महीने का तो वाकया है कि सुबह ही सुबह पाँच बजे के करीब वह खेतों में शौच करने गई और जब वह आ रही थी तो इफ्तखार भी साथियों के साथ वहाँ पहुँचा। फुल्लो को जबर्दस्ती उसने गिरा दिया और उसके साथ बुरा व्यवहार किया। फुल्लो रोती रही, चिल्लाती रही, हाथ-पैर पटकती रही, पर क्या कर सकती थी वह बेचारी ! कहाँ वह अकेली दुर्बलहृदया यौवना और कहाँ तीन जबर्दस्त पुरुष ! हाँ तो उसी वक्त उसका चिल्लाना सुन गाँव का मुखिया रामभरोसे इधर आ पड़ा, पर इन तीन लट्ठबाज़ों को देखकर वह भी घबरा गया और पास की एक झाड़ी में छुप रहा। इन तीनों ने उसे न देख पाया था। तो साहब ! उसके बाद उन्होंने उसके सामने बढिया बढ़िया मिठाइयाँ पेश कीं लेकिन वह रोती ही रही। इन तीनों ने उसे ५०) का लालच दिया और कहा कि किसी से कहना मत। लेकिन वह रोती ही रही, बोली कुछ नहीं। तब न जाने क्या सोच-समझकर वे उसे उसके मुँह में रुई ठूसकर और घूँघट काढकर ले चले और पहुँचे पास के स्टेशन पर ! मुखिया ने भी छिपे छिपे इनका पीछा किया। इन्होंने कानपुर का टिकट लिया और गाड़ी में बैठ गए ! रामभरोसे भी कानपुर का ही टिकट लेकर उसी डिब्बे में जा बैठा। वहाँ जाकर इन तीनों ने सीसामऊ में एक मकान लिया और रहने लगे। पन्द्रहवें दिन की बात है

पुलिस के कर्मचारियों ने आकर इफ्तखार और इसके दोनों दोस्तों के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं। कारवाई यह सब रामभरोसे की ही थी। तो बस साहब यहाँ दारोगा जी ने इफ्तिखार के ऊपर मुकदमा चला दिया। पहले तो दारोगा जी ने जब यह देखा कि फुल्लो उनके यहा दो-तीन दिन से नहीं आती और मुखिया भी गायब है तो उन्होंने कुछ छानबीन की, पर कुछ पता न चला। बुढ़िया मालिन रोने के सिवा कुछ उत्तर न देती थी। कुछ कुछ सन्देह दारोगा जी मुखिया पर भी करने लगे थे पर वह शक दृढ़ न होने पाता था क्योंकि रामभरोसे का चरित्र बड़ा अच्छा था। परन्तु जब एक पखवाड़े पीछे रामभरोसे ने आकर सारा हाल कहा, तभी से सिराजुद्दीन साहब ने मुकदमा दायर कर रक्खा है। कल बेचारा हुसैनी बहुत रोता था। घर आकर उसने मेरा पैर पकड़ लिया। कहने लगा—हुजूर! लड़का मेरा अभी बच्चा है और अक्ल का कच्चा है। गलती हुई। मगर अब तो आप ही माई-बाप हैं। बचवा दीजिए, सरकार का जन्म भर अहसान मानूंगा। और उसने ढाई सौ रुपये मेरे पैरों पर ढुलका दिए। .. पहिले तो मैं इन्कार करता रहा। मैंने उसे कुछ गालियाँ-वालियाँ भी बकीं, झिड़क भी दिया, बहुत बुरा-भला कहा, नाराज़ हुआ, बिगड़ा... पर भई, वह न माना। अजी बस! चिपट चिपट के धाड़मार कर रोने लगा। बहुत देर तक उसने मेरा पिंड ही नहीं छोड़ा। फिर मैं पत्थर का तो बना ही हूँ! हूँ तो इन्सान ही। आखिर को मेरा हृदय पिघल ही गया। जात-कुजात का विचार न करते हुए मैंने उसे ढाढ़स बँधाया कि उसका काम करा दूँगा। कल वह तुम्हारे पास भी शायद आवे; क्योंकि तुम्हारे बारे में मैंने उससे कहा था। अब तुम्हें तो मैंने कच्चा-चिट्ठा बता दिया है।"

ज़िलेदार साहिब ने सब-कुछ सुना, थोड़ी देर शान्त रहे। फिर कुछ क्षणों के निरन्तर अपनी गम्भीर मुद्रा को भङ्ग करते हुए बोले, "साहब! गुस्सा तो मुझे इफ्तखार के ऊपर इतना आ रहा है कि साले को ज़िन्दा ही ज़मीन में गड़वा दूँ।" और इतना कहकर फिर गम्भीर हो गए।

बाबू जुगलकिशोर ने कहा (उनके शब्दों से विदित होता था कि वे रुपयों के प्रलोभन में पड़े हैं। ठहरे कलक्ट्री के एक मामूली हैसियत के क्लर्क ही।), "हाँ ! है तो बात बुरी ही।"

इसी बीच में बाबू जुगलकिशोर का लड़का दौड़ता हुआ आया और हाँफते हुए कहने लगा, "पिताजी, पिताजी ! जल्दी चलिए ! पटने से मामा जी आए हैं।"

और बाबू जुगलकिशोर उठकर चल दिए, कहते गए, "बाक़ी बातें फिर होंगी। मौका लगे तो तुम्ही शाम को मेरे मकान पर आ जाना।" जिलेदार साहिब लगे सोचने ! यार आजकल है तो घर में तङ्गी। वसूली के दिनों में जो रकम हाथ आई थी, वह सब खत्म हो चुकी है। और आज ही सुबह तो बीबी से झगड़ा हुआ था। बीबी कहती भी ठीक है कि उसकी सारी धोतियाँ फट गईं हैं, बच्चों के पास कपड़े नहीं हैं, अम्माँ जी भी रोज़ कहती हैं कि उनके पास पहनने को कुछ नहीं है, मै अलग ही कुहनियों पर फटे कोट को पहने कहीं जाते लजाता हूँ। मेरी धोती में भी पचास खोंते हैं, कमीज़ें सिर्फ दो रह गई हैं। कोट एक भी नहीं है, चप्पल टूट गई है। क्या करूँ ! आदत से मज़बूर हूँ। खाने पर ही सारी आमदनी खर्च करता हूँ। कपड़ों के लिए तरसता और तरसाता हूँ। फिर करूँ भी क्या—पच्चीस रुपल्ली का तो मैं नौकर हूँ। साढ़े नौ महगाई के मिलते हैं। २५-३० और ऊपर से आ जाते होंगे। उसमें मै हूँ, अम्माँ जी हैं, बीबी जान हैं और पाँच बच्चे हैं। लेकिन एक बात है। अगर.. लेकिन सिर्फ अगर... हुसैनी मेरे पास खुद आया और मेरे हाथ पर उसने कुछ रक्खा, तो भाई . ! लेकिन नहीं, मैं ऐसा हर्गिज नहीं कर सकता। एक म्लेच्छ एक हिन्दू लड़की की इस्मत खराब करे और मै उसी की मदद करू ताकि वह बच जाय।

तो इस समय उनके मस्तिष्क मे दो प्रकार के विचार लहरा रहे थे। एक तो यही कि अगर बीबी से जाकर कहूँ कि एक हफ्ते के अन्दर

सब के कपड़े ठीक करा दूंगा, तो पेट में चूहों का कूदना बन्द हो जाय। पर साथ ही हिन्दू होने का.. ..और फुल्लो की इज्जत का खयाल उन्हें घर दबोचता।

बाबू धर्मदत्त एक साधारण हैसियत के ज़िलेदार थे। चाहते तो अपना एक महल भी खड़ा करा सकते थे, परन्तु हराम का पैसा लेना उन्होंने कभी सीखा नहीं था। जो कोई किसान, आदि जो कुछ भी खुशी से उनके हाथ पर धर जाता ले लेते कभी किसी से ज़बर्दस्ती पैसा लेने की उन्हें हिम्मत न पड़ी। पर आज खुदा को कुछ और ही मंजूर था। हाँ तो वह सोच रहे थे कि ईमान बड़ा है या धन धन की हीनता से घर की माली हालत बिगड़ती थी, बच्चे फटे कपड़े पहने नाक कटवाते थे, बीबी झगडा करती थी; परन्तु ईमान पर न चलने से कुछ भी न होता था। अन्तत लक्ष्मी ने ईमान पर विजय पाई।

सनक उठी और जिलेदार साहिब उठे सिविल लाइन्स जाने के लिए। मामले की अच्छी तरह छानबीन जो करनी थी। घर से बाहर पैर रखा ही था कि हुसैनी इनके पैरों पर आकर लोट गया। हुसैनी को तो ये जानते ही थे क्योंकि कई बार उससे वास्ता पड़ा था। दूसरे उनके श्वसुर का रोज़ का काम करनेवाला था। जिलेदार साहब उसके द्वारा किए गए इस व्यवहार से चौंक पड़े; बोले 'कहो २, क्या है?' 'हुज़ूर! मेरी इज्जत आपके हाथ में है' कहकर वह आँखों से पानी बरसाने लगा। जिलेदार साहब ने उसे चुप कराया; पूछा 'भई! पूरी बात तो बताओ।'

और प्रत्येक मनुष्य जानता है कि हर क़िस्म की बातचीत में हर अपराधी अपने क़सूर को छिपा जाता है, हुसैनी ने भी ऐसा ही किया। परन्तु बीच २ में वह जो यह कह बैठता था कि हुज़ूर! आयन्दा ऐसा कभी न होगा उससे पता चलता था कि ज़रूर इसके लड़के की कुछ न कुछ शरारत है।

यहाँ पर इन दोनों की बातचीत का पूर्ण विवरण देना बेकार होगा।

हुसैनी ने फलों से भरी हुई एक टोकरी और ढाई सौ रुपये उनके क़दमों में बिछा दिए।

मनुष्य मनुष्य ही होता है। जरा सी देर में इधर से उधर हो जाता है। उसको गिरते देर नहीं लगती। हमारे ज़िलेदार साहिब का भी यही हाल हुआ। समय का फेर उन्हें बहा ले गया।

× × ×

हुसैनी के चले जाने पर पहले पहल तो जिलेदार साहिब ने फलों से अपनी क्षुधा को शान्त किया। तत्पश्चात् दौड़े २ बाबू जुगलकिशोर के पास पहुँचे। फिर बातें हुई कान ही कान में जिन्हें कोई न सुन सका।

+ × +

जिलेदार साहिब मुखिया के यहाँ बैठे थे और सामने खड़ी फुल्लो रो रही थी। बाबू धर्मदत्त जी कहते जा रहे थे "फुल्लो! देखो! अब इज़्ज़त तो तुम्हारी बर्बाद ही हो गई। यह तो किसी सूरत में वापिस नहीं हो सकती। लिहाजा क़सूरवारों को सजा दिलवाने से तुम्हें कुछ न मिलेगा। लेकिन अब चूँकि दरोगा जी ने मुक़दमा दायर कर रखा है, तो इसमें तुम्हें बयान देना ही होगा। देखो! तुम यह कह देना कि इफ्तिखार नहीं था। ये दोनों ही आदमी थे। बेहतर तो यही होगा कि तुम इफ्तिखार का नाम ही न लो। बाकी दोनों का नाम ले देना।"

ज़िलेदार साहिब फुल्लो को समझा रहे थे, फुल्लो खड़ी २ आँसू बहा रही थी और मुखिया की मुखाकृति उस समय देखने योग्य थी। फुल्लो जितनी देर वहाँ खड़ी रही, उसने रोने के अतिरिक्त एक शब्द भी मुँह से न निकाला। मुखिया सब सुनता जाता था और उसकी भौंहें टेढ़ी होती जाती थीं।

यह दृश्य था मुखिया के घर पर का। मुखिया के द्वारा फुल्लो बुलवा ली गई थी। अब ज़िलेदार साहिब ने उसको समझाया, फुल्लो कुछ न बोली। बाबू धर्मदत्त अपना काम सिद्ध होते देख उठ खड़े हुए। पहले

फुल्लो को चले जाने को कहा, फिर मुखिया के हाथ पर पचास रुपये रखे और कहा कि तुम भी अपने बयान में इफ़्तिख़ार का नाम न लेना।

रुपये की लालच बुरी बला होती है।

+ × ×

केस सेशन-जज के पास पहुँचा। जज साहिब बाबू जुगलकिशोर की ममेरी भगिनीं के पति थे। ये दोनों एक दिन उसके यहाँ पहुँचे। जो कुछ इन्होंने उनसे कहा, उसका सारांश यह था।

'साहब! आपके यहाँ फुल्लो वाला जो केस आया है उसमें हम लोगों को यह कहना है कि इफ्तिखार इसमें निर्दोष है। दूसरे दोनों अपराधियों की इफ्तिख़ार से जानी दुश्मनी है, इसीलिए वे भी यही कहेंगे कि इस मामले में उसका हाथ था। मगर बात तो सच्ची यह है कि दारोग़ा साहिब की भी इफ्तिखार के यहाॅ से ख़ान्दानी शत्रुता चली आती है, अतः उन्होंने उसका नाम कसूरवारों मे दर्ज कराया है। हमारी आपसे अर्ज है कि वह साफ छोड़ दिया जाय।'

× × ×

न्यायाधीश अपनी कुर्सी पर विराजमान थे। सामने फुल्लो खडी रो रही थी। दोनों अपराधी गदूद और यूसुफ़ शिर झुकाये खड़े थे। रामभरोसे अपने बयान में कह चुका था कि इफ्तिखार को तो उसने उन दोनों के साथ देखा ही नहीं। फक चेहरा लिए इफ्तिखार भी पास ही उन दोनों के खड़ा था। फुल्लो से पूछा गया कि उसने इफ़्तिखार को देखा या नहीं। उसने भी रोते २ सिर ('नहीं' सूचक) हिला दिया।

जज—इफ्तखार! तुम इन लोगों के साथ थे या नहीं?

इफ्तिखार— जी नहीं!

जज—तब फिर तुम्हारा नाम इन दोनों के साथ क्यों लिखा हुआ है?

इफ्तिखार—साहब! दारोग़ा जी की मेरे यहाॅ से दुश्मनीं है।

जज—क्या?

इफ्तिख़ार—मेरे बाबा से इनके मामू की एक बार लड़ाई हो गई। उसमें मुक़दमा भी चला था। हुज़ूर ! तभी से वह दुश्मनी चली आती है। उस केस में मेरे बाबा जीत गये थे।

जज—(यूसुफ़ और ग़दूद से) इफ्तिख़ार तुम्हारे साथ था या नहीं ?

दोनों—था हुज़ूर। असली कार्रवाई तो इसी की है।

गदूद और यूसुफ़ पहले ही अपना २ क़सूर क़बूल चुके थे। वस्तुतः उनका अपराध अधिक नहीं था। तब फिर वे इफ्तख़ार को बच जाने देकर स्वयं क्यों फँसते। उन्होंने उसका नाम ले दिया।

फैसला सुनाया गया, "गदूद और यूसुफ़ को ३-३ महीने की सजा दी जाती है ! इनको सिर्फ ३-३ महीने की जेल। इसीलिए दी जाती है कि इन्होंने अपना क़सूर क़बूल कर लिया है। इफ्तिखार का यह कहना कि चूँकि दारोगा जी से उसकी दुश्मनी है यह साबित नहीं करता कि वह खेत पर अनुपस्थित था। फिर गदूद और यूसुफ़ कहते हैं कि इफ़्तख़ार उनके साथ था। और दूसरी छानबीनों से भी यही पता चलता है कि इफ्तिखार ऐन मौके पर मौजूद था। इफ्जिखार क़सूरवार होते हुए भी झूठ बोलता है। इसलिए उसको ५००) जुर्माने की और २ वर्ष के कारावास की सज़ा दी जाती है।"

११—दुखिया

हाँ तो वह बैठी हुई थी। और सुन रही थी बराबर वाले मकान में बज रहा रिकार्ड 'दुनिया में रामा जोड़े ही जोड़े'। उसने सुना और हृदय में उसके एक हूक उठी। उठकर दर्पण मे मुँह देखा, बाल सँवारे साड़ी ठीक की और...और......।

वह खिडकी के पास आकर बैठ गई। सामने से दो पति-पत्नी एक दूसरे की कमर में बाहें डाले, मस्त चाल से, शायद सिनेमा देखने—जा रहे थे। उसने देखा, उसके हृदय में एक बुलबुला उठा और शान्त हो गया। एक कार निकली जिसमें दो प्रेमी-प्रेमिका बैठे सैर करने जा रहे थे। क्यों? हाँ, तो.. वह सोचने लगी। परमात्मा ने उसका भी जोड़ा बनाया है परन्तु अद्भुत प्रकार का। उसका स्वामी उससे कोसों दूर है। और...और यह उसके विरह में तड़प रही है। न जाने क्यों भगवान् ने इतनी वेदना उसके भाग्य में लिखी है। उसकी भी एक कहानी है। हाँ, उसके इस छोटे से जीवन की भी एक क्लेशपूर्ण गाथा है। और जहाँ उसके मन में यौवन की तरङ्गें लहरें ले रही थीं, वहाँ उसके सामने...उसके सामने... उसके जीवन की सारी घटनाएं अपनी रूप-छटा भी दिखला रही थीं।

उसके पिता दिल्ली में एक साधारण वैद्य हैं। यह उन्हीं के पास रहती है। क्यों? उसके पिता ने उसे अपने लड़के की भाँति पाला था। कारण कि उसकी माता का उसके शैशवकाल में ही स्वर्गवास हो गया था। पिता ने दूसरी शादी न की। बच्ची को माता की भाँति पाल-पोस कर बड़ा किया। ८ वीं कक्षा तक की उसे शिक्षा दिलवाई। और विवाह उसका कर दिया मेरठ में। मेरठ के सुप्रसिद्ध ज़मींदार लाला सीताराम उसके श्वसुर बने। वह थी अरुणा और उसका पति था सूरज। अरुणा

थी भी अरुण ही, लाली भरे गुलाबी गालों वाला। सूरज का अरुण से जैसा सम्बन्ध रहता है, वैसा हीं इनमें भी था। सूरज अरुणा को लिए बिना कहीं न जाता। सूरज कहीं नौकर न था। घर में सब कुछ था। किसी वस्तु की कमी न थी। धन-दौलत, माल खज़ाना सभी कुछ तो उसके यहाँ था तो फिर वह क्यों किसी के तलवे चाटता फिरता। पढ़ा भी वह अधिक न था।

हाँ तो विवाह के अनन्तर दो वर्ष तक दोनों प्रेम की नदी में स्नान करते रहे। दिनों की भाँति वर्ष व्यतीत हो गए। और एक दिन वह भी आया जब इनके भाग्य का सूरज डूब गया। इनके यहाँ ऐसा डाका पड़ा कि राजा से रक बन गये—सो तो हुआ ही, परन्तु साथ ही साथ जमींदार साहिब और उनकी पत्नी की जान भी चली गई। सूरज ने पुलिस की सहायता से डाकुओं को पकड़वाने का यत्न भी किया, किन्तु सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। और तभी, जब सूरज को कहीं कोई अच्छी नौकरी न मिली तो, अरुणा को दिल्ली में छोड़कर उसने अपना नाम सेना में लिखा लिया था। और कुछ ही दिनों के पश्चात् चला गया था वह आसाम को। और उसी समय से उसका प्रियतम उससे बिछुड़ गया—शायद सदा के लिए।

यह कहानी उसके मस्तिष्क में चक्कर काट गई और उसके हृदय में आग सुलगा गई। यौवनावस्था की भावनाएँ प्रबल हो उठीं। और...और वह यौवन की सरिता मे गोते खाते २ उसी में डूब कर बह गई .... ।

आज उसने अपने पिता से आज्ञा पा ली थी। इसी से बहुत प्रसन्न थी। उसका तीन दिवस का सत्याग्रह आज सफल हो गया था। उसने सुना था युद्ध में स्त्रियाँ भी काम करती हैं। वहाँ उन्हे नर्स बन कर रहना पड़ता है। क्यों न वह इस प्रकार वर्त्तमान सग्रामस्थल पर पहुँच कर अपने पति से मिले! पता तो उसे मालूम था ही। सूरज के पत्र जो उसके पास आते रहते थे। इसीलिए उसने पिता से आक्ज़ीलरी वीमेन्स

कोर में नाम लिखाने की आज्ञा माँगी थी। पिता ने बहुतेरा समझाया 'बेटी मान जाओ! लड़ाई अब समाप्त होने वाली है। सूरज शीघ्र ही लौटेगा'। परन्तु तीन दिन तक जब उसने खाना न खाया, निद्रा को त्यागा; तो उनके हृदय में मातृभाव उमड़ आया—और न जाने किस भाँति जी कड़ा करके उन्होंने अपनी सम्मति दे दी। वह भी क्या कर सकते थे। महीने भर तक तो उन्होंने सूरज को भी अपने पास रखा था...परन्तु सुसराल की मुफ्त की रोटियाँ तोड़ना सूरज को न भाया और एक दिन रात को वह घर से निकल भागा था। उसके बाद का हाल आप जानते ही हैं। तो पिता का आदेश मिल ही गया।

छः मास की ट्रेनिङ्ग (शिक्षा) के पश्चात् उसको आसाम जाने को मिला। जाते समय वह खुश भी थी और कुछ उदास सी भी। ६ महीने से सूरज का कोई समाचार उसे न मिला था। और मिलता भी कैसे, वह तो घर में ही न थी। वह सोच रही थी कि अब मेरी मनोकामना सफल होने जा रही है। उसे मालूम था कि वह १४ वें रेजीमेण्ट में काम करता है।

पर उसकी ड्यूटी जिस अस्पताल में थी, वह फ्रन्ट से १०० मील दूर था। कई दिनों तक तो उसे अवकाश ही न मिला, फिर उसने सोचा कि किसी तरह सूरज का पता लगाऊँ। उसने विचारा...शायद टेलीफोन से पूछने पर मालूम हो सके। और वह चली टेलीफोन वाले कमरे की ओर!

और तभी उसने देखा...देखा क्या, बल्कि खुद बड़े डाक्टर साहब आकर कह गए...'नर्स, देखो! अभी एक लारी घायलों की आई है। उनके लिए जल्दी से इंतज़ाम करो'।

आखरी घायल उसकी ओर एकटक देख रहा था, पर अरुणा! वह तो कुछ भी न समझ.....! शाम को वह जब उसका टेम्परेचर लेने गई, तभी उसने उसका हाथ पकड़ लिया। अरुणा ने नेत्र गड़ाकर देखा; वह सूरज था। कुछ देर तक तो अरुणा अपनी आँखों पर

विश्वास ही न कर सकी। दोनों का मिलन हुआ था। .पर था यह क्षण भर के लिए ही।

'अरुणा—क्या तुमने मुझे देखने के लिए यह सब ..' ये शब्द सूरज के अन्तिम थे।

एक चीत्कार कर वह गिर पड़ी...और शून्य में विलीन हो गई।

१२—दिवास्वप्न

दस बजने को होते हैं तो यूनीवर्सिटी की सड़क अधिक व्यस्त हो जाती है। गोमती के पुल से लेकर यूनीवर्सिटी के भीतर तक लड़के-लड़कियों का ताँता लग जाता है। इक्के-ताँगे रिक्शे, बाइसिकिले और बीच बीच में पों-पों करती मोटर गुज़र जाती हैं। कोई लड़की पैदल, कोई बाइसिकिल पर जाती दिखाई दे जाती है तो आने-जाने वाले लड़कों की नज़रे उसीपर जम जाती हैं, टाई की गाँठ ठीक की जाने लगती है. सिर के बालों पर हाथ फेरा जाने लगता है, खाँस-खखार कर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिशे शुरू हो जाती हैं। और लड़की कनखियों से चारों ओर देखती हुई आगे बढ़ जाती है।

रोज़ भी एम० ए० फाइनल की एक छात्रा है। जाति की ईसाई, चेहरे की हँसमुख—यौवन का सौन्दर्य जैसे फूटा पड़ता है। वह भी यूनिवर्सिटी की ओर धीरे धीरे क़दम बढ़ा रही है। सोचती जाती है...हाँ... मन में उसके नाना प्रकार के विचार लहरे ले रहे हैं। उसकी भी एक कहानी है। वह सोच रही हैं कुछ पिछली बाते .....हाँ हाँ कुछ पिछली बातें ही। वे भी बरसों पुरानी नहीं; पिछले साल की ही तो बात है। जब वह एम० ए० प्रीवियस में पढ़ने के लिए गोरखपुर से आकर होस्टल में ठहरी थी और .....तभी उसने उसे......मदन को यूनिवर्सिटी में देखा था। मदन, मदन ही था—साक्षात् कामदेव का अवतार! इतना सुन्दर नौजवान उसने पहले कभी न देखा था। उसकी सुन्दरता के क्या कहने! वह था हृष्ट-पुष्ट गोरे-चिट्टे रङ्ग का, खूबसूरती में सब को मात करने वाला युवक। पर साथ ही वह . . वह था जिसने बी० ए० में टॉप किया था और एम० ए० में भी 'रेकार्डबीट' करने की सोच रहा होगा। और उसे पहिली बार ही देखकर वह उसकी ओर आकर्षित हुई थी। न मालूम किस

संस्कार से, न जाने किस अतीत के चलचित्र से और किस अज्ञात रहस्य के कारण वह उसे देख कर अपने को खो बैठी थी। रात को उस दिन उसे नींद न आई थी, भोजन न किया गया। तभी से तो वह उसी के नाम की माला फेरा करती है। हर बात में मुँह से 'मदन' का नाम निकल पडता था। हर समय, हर घड़ी न जाने क्यों मदन की प्यारी-प्यारी भोली सूरत उसे दर्शन देती रहती थी। और मदन ने वास्तव में अपना पूर्ण प्रभाव उस पर डाल दिया था। वह तो बस भावनाओं की मानों साक्षात् मूर्ति ही बन गई थी। जितनी देर वह क्लास में बैठी रहती, उसकी आँखे मदन पर ही टिकी रहती। सामने डेस्क पर खुली पुस्तक के पन्नों पर काले-काले अक्षर नाचते हुए मदन की तस्वीर बनाया करते। प्रोफेसर साहब बोर्ड पर खरिया-मिट्टी के टुकड़े से जाने क्या लिखा करते पर जब वह उसे अपनी कापी में उतारने लगती तो अनेक बार मदन का नाम लिख जाती, जैसे केवल मदन ही हो जिसे वह यहाँ पढने आती है। पर मदन . ! वह शायद एम० ए० की गहन पुस्तकों से भी कठिन था; दुर्ग्राह्य था। अपनी पुस्तकों में उलझा वह बैठा रहता, रोज की ओर देखने का शायद उसे अवकाश ही नहीं था, शायद मिलता भी नही था। जीवन में पढ़ना ही जैसे उसका ध्येय हो, पुस्तके ही जैसे उसकी प्रेमिकाएं हों। शायद रोज़ की मनोभावनाओं का उसे पता भी नहीं। और पता हो भी कैसे ? कितनी बार रोज ने मदन को अपनी आँखों से कहना चाहा पर जब कोई समझे !

एम० ए० (प्रीवियस) का परीक्षा-फल आने पर उसने—शायद इसी खयाल से कि अपने सहपाठियों (जिनमें उसके क्लास के लड़के लड़कियाँ सभी सम्मिलित थे) चायपार्टी दी थी। पर मनोकामना पूर्ण न हुई थी। निमन्त्रण पाने पर भी मदन टी-पार्टी में न आया।

और वह सोचती जाती थी कि यूनिवर्सिटी अब खुल रही है फिर उसकी रूप माधुरी का पानी करने को मिलेगा। शायद इस बार वह सफल हो सके। खैर ! ऐसा भी एक अवसर आया।

उसके भाई की शादी हुई और एक बार फिर मदन को निकट से

देखने, कुछ कहने-सुनने का लोभ वह संवरण न कर सकी। फिर उसके सहपाठी और सहपाठिनी उसके द्वारा दिए गए 'ऐट होम' में शरीक हुए। पर मदन न आया, जैसे भूले सपने लाख याद करने पर भी नहीं आते।

और वन जाने किस धुन में, न जाने किस सनक में और न जाने कैसी भावनाओं के प्रबल वेग के वशीभूत हो कर उसने.......आखिर को.... हाँ......एक प्रेम-पत्र लिखकर उसने मदन को दिया। मदन ने उसको पढ़ा और उसे एक से अनेक करके डस्ट-बीन में फेक दिया जैसे कागज़ के उस टुकड़े का उसके निकट यही उपयोग हो। वह बोला कुछ नहीं, उसने किया कुछ नहीं, शायद उसने सोचा भी कुछ न हो।

उत्तर की प्रतीक्षा ने रोज को बावली बना रखा था.... ...और...... और..... मदन !..... .उफ! कितना निर्दय, सोच कर रोज रह जाती पर दर्द उपेक्षा से शायद और बढ़ता है।

रास्ते में एक दिन भेंट हो गई। वह सामने से आ रहा थ। रोज़ ने 'नमस्ते' की और वह बिना उत्तर दिए, उसकी ओर बिना देखे, चला गया। उत्तर कोई नहीं था।

पर यौवन की प्यास जब प्रबल हो उठती है तो उसे कोई रोक नहीं पाता। एक दिन अपने यौवन के उबलते हुए तूफान को न रोक सकी और पहुँची उसके घर पर। मदन पुस्तकों के संसार में भ्रमण कर रहा था। दैवयोग से उस दिन उसके घर पर कोई और न था। रोज़ ने दरवाज़ा खटखटाया, मदन ने खोल दिया। मानो वह उसे जानता ही न हो, उसने उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि फेरी। पर रोज़ को यह सब देखने के लिए जैसे आँखें ही न हों। वह कहती गई अपने मन की बातें। हाँ, वह कहती गई; स्वयं नहीं, किसी अज्ञात प्रेरणा से। उसने कहा—मदन ! मदन ! क्या तुम्हें मेरी दशा पर तरस नहीं आता, मैं तुम्हारे चरणों में आती हूँ और तुम मुझे ठुकराते हो। मैं आज तुमसे भीख माँगने आई हूँ। क्या तुम मुझे न दे सकोगे? मेरी इच्छा पूरी न करोगे, डियर मदन !

पर उसकी सारी आशाओं पर पानी पड़ गया है। मदन ने कुछ उत्तर

न दिया। रोज़ का हृदय रो उठा। हाय ! जिसके पीछे मरी, उसी ने मुझे मार डाला। न जाने किस तरह अपनी व्यथाओं को दबा कर वह लौट पड़ी।

पर उसकी उपेक्षा कर वह जैसे उसके जीवन में बस गया है। होस्टल आकर वह अपने कमरे में चली गई, दरवाज़ा बन्द कर लिया और तकिये पर सिर रख फूट-फूट कर रोने लगी; हृदय जैसे आँसुओं की राह बह जाना चाहता हो; जैसे वह किसी दूसरी दुनिया में हो, दिवास्वप्न में बनते-बिगड़ते संसार आने लगे।

वह एक कमरे में खड़ी है। मदन भी वहीं है। ज्यों-ज्यों वह मदन के निकट जाने को दौडती है, त्यों-त्यों वह चिल्ला उठता है जैसे कोई अबोध बालक डर कर चिल्लाता है और भागने की कोशिश करता है। आखिर कमरे मे ही तो है। उसने उसे पकड़ लिया। मदन ने नेत्र मूँद लिए और 'बचाओ-बचाओ' कर चीख उठा।

रोज की विचार-शृङ्खला को एक धक्का-सा लगा, आँखे खुल गईं, देखा, सामने नौकरानी चाय की ट्रे लिये खड़ी है और उसने देखा—उसकी छत के घोंसले में दो पक्षी लड़ रहे है।

१३—अबला

जाड़े के दिन थे। दिसम्बर का महीना। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। किसी तरह लिहाफ से मुँह निकाला। घड़ी की ओर देखा, सात बज रहे थे। झटपट बिस्तरा छोड़ घर से बाहर निकल आया। रोगिणी पत्नी राधा के लिए दूध जो लाना था। बशीर गद्दी के यहाँ चल दिया। लोटा लेकर मुश्किल से पचास क़दम चल पाया हूँगा कि केशव के मकान के बाहर चबूतरे पर पड़ा दीख पड़ा एक लम्बा-सा बड़ा काग़ज़। उठा कर देख ही तो लिया। किसी स्त्री का लिखा मालूम पड़ता था। अन्त में देखा, लेखिका नाम था 'उमा'। उमा! मैं चौंक पड़ा। यह तो केशव की पत्नी का नाम है। अब से कोई ३ ही वर्ष पहले की तो बात ही है। केशव मेरा परम-मित्र है। उसकी शादी में जब मैं गया था, तो उसने मुझे दिखाई थी सुसराल से मिली अँगूठी। एक ओर लिखा था 'केशव'; दूसरी ओर 'उमा'। मैंने उसे बिजली के खम्भे के नीचे आकर पढ़ना आरम्भ किया।

× × ×

संसार भर की भगनियो!

सुन लो, पढ़ लो, देख लो इस अबला की कहानी। तुम्हें भी कुछ शिक्षा मिलेगी। अपने कर्त्तव्य के विषय में कुछ ज्ञान ही प्राप्त होगा और इस पतित हिन्दू-समाज के विरुद्ध तुम्हारा हृदय आवाज़ें उठाने लगेगा।

मेरा जन्म जिस गाँव में हुआ, उसका मैं नाम तो न बताऊँगी। हाँ! उसके ज़मींदार की मैं लड़की हूँ। अपने बचपन के दिनों की याद करती हूँ, तो आँसू रोकते नहीं बनते। हाँ, वे दिन ऐसे ही थे। गाँव-भरमें अपना प्रभुत्व था और कोई मेरे सामने जबान तक न हिला सकता था।

घर में कमी ही किस बात की थी! सारा गाँव क़ब्जे में था, उस पर ८-१० नौकर बने ही रहते थे। एक आलीशान मकान में रहने वाली मैं उस जीवन के अनुपम आनन्द दिवसों को नहीं भूल सकती। मकान के पीछे बड़ा भारी बाग़ था, जिसमें नाना प्रकार के बेल-वृक्ष थे। और यही था मेरा क्रीड़ा-स्थल। आस पास की लड़कियाँ मुझसे मित्रता स्थापित करने के लिए लालायित रहती थीं। मैं अपने पिता की इक-लौती सन्तान ठहरी, राजकुमारी से क्या कम थी। ज़रा-ज़रा सी बात पर रूठ जाती, और घण्टों सहेलियों से मनौती करवाती। जिस वक़्त जिस चीज की इच्छा होती, मजाल नहीं कि उसके मिलने में देर हो जाती। बाग में हरी-हरी घास पर दौड़कर खेलना, लुक-छिपकर कू-कू करना, स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करना, हँसी की बातें तो बस शैशवकाल को बुलावा देने लगती हैं।

गाँव बनारस के जिले ही में है। अक्सर पिताजी यहाँ आया करते थे; सैकड़ों काम बनारस के लगे रहते थे। एक बार मैं जिद करके यहाँ की सैर करने चली आई उनके साथ। वे पहले की तरह एक जज के यहाँ ठहरे। यह उनके घनिष्ट मित्रों में से थे। जज साहब दूर से हमारे रिश्तेदार लगते थे, दूसरे गाँव के मदरसे में पिताजी के साथ-साथ पढ़े थे। प्राइमरी पास करने के बाद पिता जी घर के कारबार में लग गए और वह बनारस आकर रहने लगे। १० वर्ष की मैं थी। १२ वर्ष का जज साहब का लड़का केशव। दिन भर उसी के साथ खेलती रहती। और तभी एक दिन मेरे सामने उन्होंने पिता जी से कहा था, 'पण्डित जी! इस अपनी स्वरूपा लड़की को तो मुझे दे दीजिए।' पिता जी ने जवाब दिया था, 'अरे! चाहता तो मैं भी यही था कि हम दोनों का सम्बन्ध चिरस्थायी रहे, और कहना ही चाहता था कि केशव और......।' जज साहब ने मुस्करा कर कहा था, 'तुम्हारी लड़की मुझे बहुत पसन्द है।'

गाँव में कोई लड़कियों का स्कूल न था। मैं अनपढ ही रह गई।

दिन बीतते कितनी देर लगती है। मैं १८ वर्ष की हो गई और उसी साल खबर आई केशव बी० ए० पास हो गया। विवाह की तय्यारियाँ होने लगीं।

विवाह होने में महीना भर रह गया था; एक अशुभ सम्वाद ने सब के मुँह पर विषाद छा दिया। जज साहब जिन्हें दमे की पुरानी बीमारी थी, ससार से कूच कर गए। विवाह ६ मास के लिए स्थगित हो गया। इसी बीच मेरे विवाह के बारे मे दो रायें हो गईं। माता जी कहा करती, 'मैं केशव के साथ उसका ब्याह न करूँगी। जज साहब तो मर ही गए। केशव का अभी क्या ठिकाना। नौकरी लगी लगी, न लगी। देखते नहीं हो आजकल एम० ए० पास जूतियाँ चटकाते फिरते हैं। रोटियों का कुछ ठीक ही नहीं है।' पिता जी कहते 'तुम्हें चाहिये क्या। सवा लाख रुपए नकद दहेज में दूंगा। फिर लड़का खूबसूरत है, बी० ए० पास है, सुशील है, तन्दुरुस्त है। दूसरे मैंने जज साहिब को इस शादी के लिए वचन दे दिया था।'

मर्दों के आगे औरतों की कहाँ चलती है। मै ब्याह कर यहाँ (बनारस) आ गई। सुहागरात भी आई अपने अरमानों के साथ। रात के १२ भी बजे, दिल धड़कने लगा। अप्रत्यक्ष की ओट में छिपे रोमैन्टिक मित्र सामने आने लगे। कमरे में एक सुसज्जित पलंग पड़ा हुआ था और नीचे एक कालीन ज़मीन पर बिछा था। मै नीचे ही पलग के सहारे एक कोने में सिकुड़ी बैठी थी। दरवाजा खटका, और मैंने देखा घूँघट के छेदों मे से। सूटेड-बूटेड, हैट-टाई लगाये, खुशबू छिटकाते हुए, चुरुट कसे हुए, चार आँखों वाले पतिदेव सामने आ खड़े हुए। मैं क्या कहती। पाँच मिनट तक इसी प्रतीक्षा में बैठी रही कि अब प्राणनाथ आवे और मेरे घूघट का पट खोलकर अपने ओंठ मेरे अधरों पर रखें और फिर वह जीवन की सर्वोत्तम घड़ी! और लो! वह तो इतनी सी ही देर बाद बाहर चले गए और ऐसे गए कि १२ दिन तक सूरत न दिखाई। एक दिन सास जी ने कहा (जब सारे रिश्ते-

नातेदार चले जा चुके थे), "बेटा ! तू तो बहू से बोलता तक नहीं । ऐसी सुन्दर और सच्चरित्रा दुलहिन ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल सकती ।" और उन्होंने मुंह बनाकर कहा था, "अम्माँ. पहले ही मैं कहा करता था कि अपढ़ गंवार से शादी न करूंगा, पर तुम भी एक हो, कहने लगीं उमा से शादी न करूंगा, तो ज़हर खा लोगी । कौनसी बड़ी सुलच्छना बहू पाई है । सुहागरात वाले दिन मैं इसके पास गया, तो बोली तक नहीं । देखो तो, मिज़ाज़ दिखाती है । बड़े घर की लड़की बनती है न ! चाहिए था कि घूंघट खोलकर बैठती, मेरे जाने पर मेरा स्वागत करती और मीठी-मीठी बाते सुनाती । घर में बाजे सैकड़ों रखे हैं; सो कह दो जानती ही नहीं है । किसी बात का सलीक़ा भी है उसे । मुझसे तो इतनी नफरत करती है कि दिन रात मुंह हाथ भर घूंघट से तोपे रहती है । अम्माँ, तुमने तो मेरी जिन्दगी बेकार कर दी । कहाँ बी० ए० पास मैं, और कहाँ निपट गंवट्टी वह । भला कैसी जोड़ी पसन्द की तुमने ! हुँ !" और उठकर बाहर चले गए ।

१५ दिन बाद मैं मायके चली गई । ८ महीने वहाँ एक ट्यूटर रखकर मामूली हिन्दी पढ़ी और एक बार फिर, हाँ, अन्तिम बार सुसराल आई । आकर देखा तो मालूम हुआ दहेज में मिला रुपया मदिरापान और वेश्यागमन में उड़ाया जा रहा है । नौकरी छूट गई है । अनायास प्राप्त धन भी समाप्ति पर है । अम्मा जी (सास जी) का भी व्यवहार बदल गया था । अब यदि वह मुझे पढते देखतीं तो चिल्लाने लगतीं, 'बड़ी पढ़क्कार आई है । चल, तरकारी छौंक चल के' । एक दिन दाल में मक्खी पड़ गई । 'मैने कहा मै न खाऊंगी ।' बस बरस पड़ीं 'तुम्हारे लिए सोहन हलुआ कहाँ से लाऊं । मक्खी पड़ी दाल न खायेंगी । अरी निकाल दे उसे ।' ३ साल ब्याह को हो चुके थे । निस्सन्तान औरत की वैसे ही क़दर नहीं होती । मनोविज्ञान बतलाता है कि गरीबी में मिजाज तेज़ हो जाता है और जबान खुल जाती है । तब फिर अम्माँ जी का क्या क़सूर था । अपराध तो मेरे प्रारब्ध का था । पतिराम विमुख

रहते ही थे, सास जी भी पराङ्मुख हो गईं। छोटी-छोटी बात पर बिगड़ उठतीं। और सहने की भी एक हद होती है। कल रात २ बजे कहीं से लौटे। अम्मा जी सो रही थीं। मैंने किवाड़ खोले। दुर्गन्धिप्रद मुंह को लिए केशव बाबू डंडा लेकर मेरे ऊपर पिल पड़े 'तूने क्यों किवाड़ खोले ! अम्मा को नहीं जगा सकती थी ?' और आज जब सब सो रहे हैं, १ बजे का वक्त है, मैं ज़हर खाकर मरी जाती हूँ। यह जहर एक विश्वस्त लड़के (मुहल्ले के) हाथ शाम को मगवा लिया था। और अब विषपान करके दिखाए जा रही हूँ तुम्हें बेमेल विवाह का फल। वाह रे हिन्दू-समाज ! तू कितना मूर्ख है...... ...उमा

+ + +

पत्र हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। काफ़ी उजेला हो चुका था। ध्यान हो आया राधा दूध के लिए चिल्लाती होगी। मैं आगे बढ़ चला।

१४—पिया का दुखड़ा

हमारे लखनऊ वाले मकान में एक ताल है छोटा-सा। आजकल तो वह सूखा सा पड़ा है। किन्तु आज से ६ वर्ष पूर्व जब हम वहाँ रहा करते थे, तो वह छोटी-छोटी मछलियों से भरा रहता था। पिता जी वकालत करते थे। मिलने-जुलने में ही लगे रहते थे वह तो। वह क्या जानें कि हम भाई लोग दिन भर कितनी शैतानी करते थे और किस तरह हम मछलियों को मारा करते थे। उस समय वह हमारे लिए खेल ही था। एक अजब सुख का अनुभव करते थे हम लोग, जब देखते थे कि मछली जमीन पर मरी पड़ी है। इन मछलियों को हम एक दूसरे पर फेंक-फेक कर डराया करते थे। अब तो उन से घृणा लगती है। तब मछली मार कर हम खिलखिला कर हँस पड़ते थे। अब जब उस पर विचारता हूँ तो एक अद्भुत बात की खोज हो जाती है। मनुष्यों की भाँति जानवरों के भी हृदय होता है। ये भी रोमान्स से दूर नहीं रहते। हम लोग चुपके से घर में से सूप उठा लाते। उसके द्वारा मछलियों को ऊपर निकाल लेते और सूखी भूमि पर डाल देते। कुछ क्षणों पश्चात् मछली दम तोड़ देती। हमारा खेल आरम्भ हो जाता। मछलियों की संख्या बढ़ती ही रहती, घटती नही।

एक मछली जो लाल रङ्ग की थी, पानी में किलोलें कर रही थी। कभी ऊपर से नीचे जाती और कभी इधर से उधर। पानी में लकीरें बन जातीं। मानों वे उन दोनों के आपस में सम्भोग करने की स्मृतियाँ थी रेखाओं के रूप में। मछली जल में विहार करती और मछली के साथ से जल का चञ्चल रूप दिखाई पडता। पानी ही जीवन था मछली का। किसी सीमा तक पानी की शोभा मछली पर निर्भर रहती।

मैं दुष्ट प्रकृति का था। मैंने मछली को उसके पिया पानी से वियुक्त

करना चाहा। अपने भाइयों को बुला लाया। मछली पानी से निकाल ली गई। सूखी ज़मीन पर पड़ी-पड़ी वह छटपटाने लगी अपने पिया के वियोग में।

पानी में दूसरी मछलियाँ भी थीं। वह उन्हीं के साथ क्रीड़ा करने में मग्न हो रहा। वाह रे पुरुष जाति के परुष हृदय! धिक्कार है तुझको! तू वफ़ादार नहीं।

मछली तड़पती रही। लोटती-पोटती रही। जीवन से निराश हो गई। वह समझी: मेरे पिया की मृत्यु हो गई या वह इतनी दूर चले गए जहाँ मैं स्वयं नहीं पहुँच सकती। वह मर गई।

ताल की नालियाँ खोल दीं ताल ख़ाली हो गया। कुछ मछलियाँ पानी के साथ बह गईं। जो बची वे अगले दिन धूप में सताप पाकर नष्ट हो गईं।

पिया का वियोग असह्य होता है।

१५—ऐसा क्यों

(१)

"सुनते हो !"

"क्या ?"

"पड़ोसिन के लड़का हुआ ।"

बाहर से किसी ने पुकारा और निरञ्जन उससे मिलने चला गया ।

\+ + +

"ए माई ! तेरे बेटे पोते हों । तेरा घर बना रहे । तू राजी—खुशी रहे । राम तेरा भला करे । एक चुटकी दे जा मेरी मय्या ।"

और निर्मला उसके आँचल में कटोरी भर आँटा डाल आई ।

\+ + +

बातें हो रही थीं ।

निर्मला ने पान लगा कर अपनी सहेली को दिया ।

"राम तुझे बेटा देवे ।"

\+ + +

"पण्डित जी ! पालागन ।"

"खुश रहो । दूधो नहाओ, पूतो फलो ।"

\+ + +

पड़ोसिन की सास के पैर छुए ।

"बेटा हो ! बहू तेरे ।"

\+ + +

"अच्छा जोशी जी आए हैं । सनीचर है आज !" निर्मला ने पाव भर तेल और पाँच पैसे उनकी लुटिया में डाल दिये ।

"जल्दी से पुत्र हो" सुनकर वह निहाल हो गई ।

\+ + +

"ज्योतिषी जी ! इस मेरी सखी निर्मला का हाथ देखिये। यह क्या बाँझ ही रहेगी ?"

"देखूँ"..... ....

"बेटी तेरे अगले साल में योग है।" निर्मला ने उन्हें सवा रुपया दिया।

\+ + +

तीन वर्ष पश्चात्

"तुम मानती तो हो नहीं। ये सब बनावटी साधु होते हैं। वहाँ जाना बेकार में पैसे खोना है।"

"अजी ! मेरी भी तो सुनो ! दिल्ली में इन्होंने जिस २ के सिर पर हाथ फेरा, उसकी मुराद साल भर में पूरी हो गई। मेरे भय्या राधा किशन की भी तो नौकरी इनके हाथ फेरने से लगी है। सच न मानो तो जब दिल्ली जाओ तो पूछ लेना।"

"ये सब बेकार के ढकोसले हैं। ठगी जाओगी। कुछ भी न मिलेगा।"

"देखो रामकली भी तो अपने बेटे को अच्छा करवाने के लिये जायगी।"

"मैं कुछ नहीं जानता। हर वक्त चक चक चक चक। लड़का न हुआ कोई बवाल हो गया।"

आँसू पोंछती हुई।

\+ + +

"देखो कितने भले लगते हैं महात्मा जी।"

"मालूम पड़ता है किसी देवता ने अवतार लिया है।" दो सखियों में बातें हुईं।..... ....

महात्मा जी शेर की खाल पहने गीदड़ निकले।

\+ + +

यह थी सहारनपुर के एक घर की हालत।

निरञ्जन एक ज़िलेदार था। घर में निर्मला के अतिरिक्त और कोई न था। दोनों के विवाह को १० वर्ष गुजरे परन्तु विधाता ने इन्हें गृहस्थी का सुख न दिया। निर्मला जो विवाह के समय गुलाब के फूल के समान सुन्दर थी, वह अब मुरझा आई थी। रोज़ न जाने कितने देवी-देवता मनाये जाते, पर उसकी अभिलाषा पूर्ण न होती।

(२)

"ऊँ २ ऊँ"

'क्या है लल्लू?"

"अम्मा थाने तो"

कटोरदार खुला बिस्तरे पर ही, सुबह ही सुबह।

\+ + +

"अहा हा हा! लल्लू तल्ली बजा रहा है! हाँ भाई कैछें?"

चट् की एक धीमी आवाज़ हुई।

× + +

"अली अम्मा! बन्दल!

'कहाँ है मेरे लाल"

'बो है बो"

"धत् वह तो मिट्टी का खिलौना है।"

पुच् पुच्

\+ + +

"अम्मा ताट बाला आया है"

"खाले जितनी तुझसे खाई खाय"

\+ + +

"बस तुम उसे मारा न करो। न जाने कितने पुण्यों से तो एक लड़का देखने को मिला है।"

"और— क्या! वह चाहे चोरी छोड़ डकैती भी कर डाले तो मैं उससे न बोलूँ! मुझसे तो यह होने से रहा।"

"बच्चा तो है ही। कोई चीज़ पड़ोसन के घर से उठा लाया तो चोरी हो गई!"

लल्लू कुछ र बड़ा हो चला था।

\+ × +

"कहो भाई निरञ्जन! तुम्हारे घर में यह रोना-पीटना क्यों मच रहा है!

सिसकती हुई आवाज़

मिलेट्री .. की...ला . आ...री...से पिचकर मेरा....लल्....लल्... लू..........

१६—विद्यार्थी-जीवन

बालपन सबसे अच्छा कहा जाता है। उसमें भी विद्यार्थी-जीवन सर्वोत्तम है। स्कूलों का विद्यार्थी-जीवन तो सीधा-सादा अध्ययन की ओर प्रवृत्त रहता है; किन्तु कालेज का स्टूडेन्ट केवल कहलाने भर का ही स्टूडेन्ट है। उसमें पढ़ाई थोड़ी होती है और मौज ज्यादा। दिन में चार घंटे पढ़ाई होती और ३ घंटे आराम। उसमें सिवाय छेड़खानी करनें, सैर-सपाटा करने, एक-दूसरे का मजाक बनाने और मास्टरों को उल्लू बनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। ये दिन कभी नहीं भूले जा सकते। हँसी-ठट्ठा करने वाले युवकों का साथ, यौवनावस्था की चञ्चल प्रकृति, साँसारिक सुख के पीछे दौड़ना, ईश्वर को न मानना, साहब बहादुर बने रहना, सब पर रौब जमाना, नौकरों को तंग करना, घंटे कट करके सिनेमा देखने चले जाना, क्लास में ही अध्यापकों से दिल्लगी करना, काम न करना और फिर भी चाल से बच जाना, लड़कियों की ही बात-चीत करना, उनके पीछे लगे रहकर उन्हें आकर्षित करने का प्रयत्न करना, घर वालों को चकमे देना इत्यादि मजे कालिज-जीवन में ही मिलते हैं। इस जीवन का मजा मैंने भी लूटा है। और उसके द्वारा आप की दिलचस्पी के लिये कुछ घटनाएँ वर्णन करता हूँ। मैं यहाँ पर यह न बताऊँगा कि मैं किस कालिज में पढ़ा।

× × +

शाम के चार बजे हम लोग कॉलिज से लौट रहे थे। ५-६ लड़के थे। रास्ते में एक रिक्शे वाला जा रहा था। हमने उसे बुलाया। वह पास आया और बोला, "बाबूजी! कहिए क्या काम है?"

हमने पूछा, "चौक लें चलोगे?"

वह बोला, "बाबूजी रिक्शा तो प्राइवेट है। मैं इस पर किसी को नहीं ले जा सकता।"

हमने गरज कर कहा, "नही तुमको ले चलना पड़ेगा।"

दो लड़के जबर्दस्ती जाकर बैठ गए।

वह चिल्लाता रहा। उन्हें बैठा देख हाथ जोड़कर कहने लगा, "बाबू जी! मै गरीब आदमी हूँ। नाहक मुझे तंग करते हो।"

किसी ने कुछ न सुना।

एक लड़का आगे वाली साइकिल पर जा बैठा। दो लड़के रिक्शे के पीछे खड़े थे।

रिक्शे की साइकिल की गद्दी पर बैठा हुआ लड़का बोला, 'अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। सीधे २ ले जाओ इन दो लड़कों को।"

"जी बाबू जी! आप के पैरों पड़ता हूँ।"

"अब तुम दोस्त मार खाओगे। तुमसे मुफ्त ले जाने को तो कह नहीं रहे हैं। जो कुछ माँगोगे वही इन्हें पहुँचा कर मिल जाएगा। फिर क्या नाहीं २ करते हो!"

इधर रमाकान्त ने रिक्शे वाले को बातों में लगा रखा था, और उधर पीछे खड़े लड़कों ने दोनों पिछलें पहियों के धीरे से वालपिन निकाल कर जेब में धर लिए। फुस-फुस करती हुई हवा निकल गई। हम लोग मुस्कराए। एक दूसरे को मुस्कराते देख सब समझ गए कि माजरा क्या है।

"अमाँ रहने दो। मरा जा रहा है रिक्शे वाला तो। अब मत तंग करो।"

'अच्छा' कहकर सब चले आए और चौराहे के मोड़ पर आकर खड़े हो गये। रिक्शे वाला गद्दी पर बैठ कर आगे बढ़ गया। हम लोगों ने देखा कि कुछ दूर जाने के बाद जब उसे पता चला कि पिछले दोनों पहियों की हवा निकाल दी गई हैं, तो वह रिक्शे पर से उतर पड़ा। देखा कि वालपिन्स ग़ायब थे। पर क्या कर सकता था वह। हमने मोड़

पर से छिपकर यह सब देखा, फिर ताली पीटते हुए और हँसी के बल लोटते-पोटते घर आए।

+ + ×

मिस्टर बोस हमे अँगरेजी पढाते थे। ये बिचारे बड़े सीधे घंटे में कभी इधर-उधर की बात न करते। क्लास में क़दम रखते ही हाज़री लेते और उसके बाद लेक्चर देने में निमग्न हो जाते। उनके लेक्चर इतने दिलचस्प होते कि हम लोगों का मन एकाग्र होकर उन्हीं पर जा जमता। कभी हम लोगों को बुरा न लगता। वे नियत समय पर आते और घंटा बजते ही कमरे से बाहर हो रहते। एक दिन हम लोगों ने उन्हें बनाने की सोची। उनका चौथा घंटा हुआ करता था। उस दिन तीसरा ख़ाली था। लिहाजा हम लोग पास के एक चरागाह पर चले गए और वहाँ से एक मेमना पकड़ लाए। और कमरे में लगी हुई बड़ी २ तस्वीरों मे से एक के पीछे उसे रख दिया। हम लोगों ने चौथा घंटा शुरू होने के केवल पाँच मिनट पूर्व ही यह सब किया। मेमना मिमियाने लगा। घंटा शुरू हुआ। लड़के एकत्रित हुए। पर बातों की चखचख में किसी ने बकरी के बच्चे की न सुनी। लेक्चरर साहिब के रूम में घुसते ही क्लास-भर में शान्ति हो गई और मैं-मैं-मैं-मैं की आवाज आने लगी। सारे लड़के ही-ही-ही-ही करके ठहाके मारने लगे। हाज़री लेना तो दूर रहा, अब मिस्टर बोस बिगड़ उठे।

अँगरेजी में बोले, "किन महाशय ने यह हरकत की है।"

सब लड़के चुप।

बोस साहिब अपनी सिधाई पर आ गए।

"जिस लड़के ने मेमने को यहाँ रक्खा है, वह मेहरबानी करके इसे उठा ले और बाहर फेंक आए।"

अब भी सब के सब शान्त।

वह और अधिक ठंडे पड़े: "मैं उस लड़के से प्रार्थना करता हूँ

जिसने इसे यहाँ रखा है कि वह इसे यहाँ से हटा देते। मैं उसके खिलाफ़ कुछ भी कार्रवाई न करूँगा।"

सब मन ही मन हँस रहे थे। बीच २ में में-में हो उठती।

उन्हें थोड़ा सा क्रोध आया, "यह बदमाशी किसकी है। जिसकी भी है वह कायर है। उसमें इतना भी साहस नहीं कि वह बाहर निकलें।"

हम लोगों ने समझा 'काम पूरा हो गया।'

मिस्टर बोस स्वयं तस्वीर के पास गए और अपने हाथों से मेमने को उठा बाहर डालने गए।

हम लोग तालियाँ पीटनें लगे। थोड़ी देर की तो पढ़ाई बची ही।

× × ×

हमारे कॉलिज के सामने से जो सड़क जाती थी, उसी पर आगे चलकर एक गर्ल्स कालिज था। उसमें पढ़ने वाली लड़कियों की मोटर बस हमारे कालिज के सामने से होकर जाती। उसमें सभी तरह की लड़कियाँ बैठतीं। लम्बी चोटी वाली भी, चश्मेवाली भी, पाउडर मलने वाली भी और महीन साड़ी वाली भी। रोज़ाना हम पाँच-चार लड़के कालिज के गेट पर खड़े हो जाते, ठीक उसी समय पर जब वह 'बस' उस सड़क पर से गुज़रती और उसमें बैठी हुई परियों को ताका करते। उनमें से कोई २ कभी मुस्करा भी पड़ती। शायद हम लोगों को बेवकूफ़ समझती हुई। कालिज की बिल्डिंग्स से पहले एक कोठी थी जिसकी एक लड़की उस बस पर आती थी। इसलिये हमारे कालिज तक उसकी चाल धीमी ही रहती। न जाने कितनी बार हम लोगों ने उन पर 'विश यू गुड लक' के नारे लगाए थे। कुछ गुंडे 'बड़ी बी सलाम' की आवाज़ें कसते। कई बार हम लोगों ने उन पर कंकड़ें फेंकी थीं। पर फल कुछ भी न होता था। बोर्ड के इम्तहानों के दिनों में चिल्लाया करते "फ़लाँ कैरेक्टर आ रहा है। अमुक एक्सप्लेनेशन देख लेना।"

यदि किसी को पेपर आउट हो जाता या हिंट्स मिल जाते तो वह इस परोपकार करने में परम हर्ष समझता ।

एक दिन हम लोगों को शैतानी सूझी । जितने भी नाम हो सकते थे उतने नामों को प्रेम भरी चिट्ठियाँ लिखकर एक दूसरे स्कूल के विद्यार्थी द्वारा उसमें डलवा दीं । उन्होंने पढकर क्या किया होगा, क्या विचारा होगा और क्या कहा होगा, हम नहीं जानते । खतों के कुछ नमूने देता हूँ ।

(१) हृदयेश्वरी शीला !

जब से तुम्हें देखा है, तुम पर मुग्ध हो गया हूँ । रात-दिन तुम्हारा ही ध्यान रहता है । तुम तो मेरी आँखों में बस गई हो । पर एक तुम हो निष्ठुर कहीं की ! पत्थर भी पसीज जाता है । पर तुम्हारा हृदय बज्र का बना है ।

तुम्हारा 'प्रेमी'

(२) प्राणेश्वरी

तुम ने तो मेरा मन मोह लिया है । बस क्या बताऊँ । तुम्हारे बिना बड़ी बेचैनी है । कल कम्पनी गार्डन में शाम के ६॥ बजे मिलो ।

तुम्हारा 'भौंरा'

(३) कमला !

न मालूम मुझे क्या हो गया है । हर समय तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हूँ । तुम्हारी उन दो आँखों को मै भूल नहीं सकता ।

'तुम्हारा पतङ्ग'

(४) कामिनी !

तुम्हारी मुस्कराहट ! क्या कहने उसके । मानो चाँद हँस रहा हो । तुम्हारा भोला मुखड़ा, सीधी चितवन । क्या बताऊ कि मेरा कैसा हाल है । तुम्हारा 'चाहने वाला'

इत्यादि इत्यादि । लिखने वाले का नाम कहीं भी न लिखा था ।

× × ×

पहले मैं बोर्डिंग में रहता था। शुरू साल में एक 'कान्ति' नाम का लड़का मेरठ से आकर मेरे ही कमरे में रहने लगा। था बहुत सीधा। हम लोगों ने उसे बेवकूफ बनाना चाहा। वह किसी लेक्चर को सुन रहा था। हम लोग अपने कमरे में खिसक आए और सब मेरे कमरे में पहुँचे। ताली मेरे पास थी ही, अतः सब अन्दर जा बैठे। मेरे पास तालियों का गुच्छा था जिसमें १५-२० तालियाँ थीं। उनमें से लगा लगाकर मैंने एक से आलमारी खोली। उसमें कान्ति का बड़ा कटोरदान रखा था जिसमें लड्डू, कतरियाँ और दालमोठ थीं। हम ४-५ लड़के सब साफ कर गए। उसी आलमारी में सेंट, क्रीम वगैरह भी रखे थे जिनकी शीशियाँ हमने खाली कर दीं। फिर एक ताली से कान्ति का ट्रङ्क खोल डाला। उसमें के सारे कपड़े निकाल लिये और बन्द करके वैसा का वैसा ही रख दिया। उन कपड़ों का फूलडोल ❀ बना कर खड़ा कर दिया। कुछ तस्वीरें इधर-उधर से एकत्रित कीं। और वस्तुतः एक सुन्दर-सा दृश्य निर्मित हो गया। एक एक चद्दर एक एक कमीज, एक एक धोती और एक एक पैजामे को इस करीने से लगा कर रक्खा कि कपड़ा अपनी असलियत छोड़ देता था। तत्पश्चात् हम दूसरे लेक्चर में चले गये।

हम लोगों ने छिप छिप कर देखा कि जब कान्ति ने शाम को यह हाल देखा तो वह बहुत भन्नाया। वार्डन के पास जाकर उनसे शिकायत की, 'साहिब! लड़के मुझे बहुत तङ्ग करते हैं।'

जवाब मिला, "तुम उनसे अलग रहा करते होंगे। तुम भी उनमें 'मिक्स' हो जाओ। फिर तुम्हें कोई भी कुछ न कहेगा।"

\+ × +

पिता जी का वहीं तबादला हो जाने की वजह से मैंने होस्टल छोड़ दिया था। कुछ इष्टमित्रों के साथ साइकिलों पर हम घर लौट रहे थे।

❀ पश्चिमी यू० पी० में जन्माष्टमी पर सजाई जाने वाली 'झाँकी' को कहते हैं।

एक गज़ब की हसीन लड़की आगे आगे बाइसिकिल पर जा रही थी। हम लोगों ने उसके पीछे अपनी अपनी साइकिलें दौड़ाई। और उसे घेर लिया। वह उतर पड़ी। बोली, 'आप लोग क्या चाहते हैं ?' हम लोगों ने उसके शरीर के कुछ अङ्गों का स्पर्श किया। कर भी वह क्या सकती थी। अचानक उधर से पुलिस की लारी आ निकली। हम सब नौ दो ग्यारह हो गये।

+ + +

मैथेमेटिक्स का घटा था। लेक्चरर साहब बोर्ड पर खड़िया मिट्टी से प्रश्नों को हल करके समझाया करते थे। हमें एक बदमाशी सूझी। लेक्चरर साहब के क्लास में प्रवेश करने के पूर्व ही मैं कालिज के पिछवाड़े वाले कवाडी बाजार से एक घण्टी खरीद लाया। उसे डेस्क के अन्दर बिल्कुल कोने में लगा दिया। ज्योंही लेक्चरर साहब की पीठ हमारी तरफ़ होती मैं टनसे घण्टी बजा देता। लेक्चरर साहब चौंक पड़ते। इधर-उधर देखते, पर कुछ न पा कर फिर बोर्ड पर लिखने लगते। लड़कों के जोर जोर के ठट्ठों के साथ घण्टी फिर टनटना उठती। एक बार आवाज़ के रुख़ के अनुसार वह मेरे पास आए। उन्होंने मेरी कुर्सी उल्टी पल्टी। इसके बाद डेस्क को उल्टा करके देखा। पर वहाँ जब कुछ हो तब तो। घण्टी तो डेस्क के अन्दर एक कोने में लगी थी जो डेस्क के अन्धकार में अदृश्य थी। लेक्चरर साहब लौट गए। एक दफ़ा टन्-टन् और हुई।

+ + +

ख़रबूजे वाला जोर-जोर से आवाज लगा रहा था 'ख़रबूजे लो लखनउआ'। हम लोगों ने उसे कालेज के फाटक पर बुलाया।

हमने पूछा—"क्या भाव दिये है भई ?"

उसने बताया—"पाँच आने सेर।"

हम लोगों ने कहा—"चार आने दो तो सारे ख़रबूजे ले लेंगे।"

उसने उत्तर दिया—"नहीं बाबू जी।"

हम लोगों ने ज़बर्दस्ती ज़िद की—"दोगे कैसे नहीं? तुम्हें देने पड़ेंगे।"

जवाब मिला—"बाबू जी! कोई धौंस तो है नहीं।" और वह टोकरा उठा कर चलने लगा तभी हम लोगों ने उस पर हमला कर दिया। एक एक लड़का एक-एक खरबूजा ले कर भाग गया। उसने जाकर प्रिंसिपल साहब से शिकायत की। प्रिंसिपल साहब हमें ढूँढते-ढूँढते नल के पास पहुँचे। हम सब खड़े हुए खरबूजे धो रहे थे। प्रिंसिपल साहब ने नाराज होकर कहा 'तुम लोग क्यों गरीब आदमी को परेशान करते हो?'

हमारा उत्तर था, "साहब! हम लोगों ने खरबूजे वाले से पूरे टोकरे के दाम पूछे। उसने पौने दो रुपये बताए। हम लोगों ने खरबूजों में मिट्टी लगी देखी तो हमने इससे कहा कि हम खरबूजे धोकर ज़रा खा देखें। मीठे होंगे तो सवा दो रुपये देंगे और फीके होंगे तो सवा रुपया। यह बहरा मालूम पड़ता है। इसने सुना न होगा।"

२ रुपये खरबूजे वाले को थमा दिये। वह सहमा खड़ा रहा कि फिर आइन्दा कभी उसकी मरम्मत न कर बैठे। प्रिंसिपल साहब चले गये। कालेज के लड़कों से सभी डरते हैं।

\+ + +

घण्टा खाली था। कुछ लड़के रूम में बैठे थे। मैं सड़क पर से एक पिल्ला उठा लाया। उसे डेस्क में बन्द करके दबाने लगा और वह ज़ोर ज़ोर से पें-पें करने लगा। प्रिंसिपल साहब का कमरा समीप ही था। उनके जूतों की चाप सुन मैंने पिल्ले को दबाना बन्द कर दिया। प्रिंसिपल साहब यह देख कर कि कमरे में किसी के पास पिल्ला नहीं है दूसरे रूम में चले गए। मैंने फिर पिल्ले को दबा दिया। लड़के हँस पड़े। प्रिंसिपल साहब ने फिर हमारे कमरे में पदार्पण किया। सब गम्भीर हो गये। कहीं भी पिल्ले को न पा वह उल्टे पाँव लौटे। कई बार इसी तरह उन्हें दौड़ाया।

\+ + +

हम लोग कालेज के बाहर सड़क पर घूम रहे थे। अखबार वाला उधर से निकला। उससे एक २ अखबार लेकर हम सब पढ़ने लगे। बस सब जगह सरसरी निगाह डालते गये।

उसे देर हुई तो उसने कहा—"बाबू जी! पैसे दीजिये।"

'कितने?"

"दो दो आने के हिसाब से।"

"भई ११ समाचार पत्र ले रहे हैं। ६-६ पैसे लो।

"नहीं।"

"तो ले जाओ" कह कर हमने सब अखबार वापिस कर दिये। खास-खास खबरे देख ही चुके थे। उस दिन से फिर कभी अखबार वाला पैदल न आया।

१७—बीते दिन

ओह ! मैं उसे भूल नहीं सकता । वह आज इस संसार में नहीं है तो क्या हुआ, उसका मुस्कराता हुआ चेहरा तो मरते दम तक मेरी आँखों के सामने रहेगा । मैं विवाहित हूँ, बाल बच्चेदार हूँ; अपनी पत्नी से प्यार करता हूँ । किन्तु क्या पुरुष एक समय में दो प्राणियों से प्रेम नहीं कर सकता ? हाँ कर सकता है, बिल्कुल कर सकता है । उन दोनों के प्रेम में थोडा सा अन्तर हो सकता है और नहीं भी । खैर ! मैं इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहता । उफ, मनुष्य का हृदय वज्र का होता है । मै उससे कहा करता था—मुँह से नहीं—'आशा ! तू मेरे जीवन की आशा है । मैं तेरे बिना न जी सकूँगा ।' और उसका मुझे देखकर खिल उठना मानों प्रकट करता था कि वह मुझसे कह रही है 'जीवन ! मेरी आशाओं के जीवन तुम्हीं हो । तुम्हारे विना मेरी आशाओं का कोई अस्तित्व नही'। मै उसे 'आशा' कहता था और वह मुझे कहती 'जीवन' । मै उससे केवल एक वर्ष बड़ा था । आज अपनी आशा के न होते हुए भी मैं जीवन के दिन काट रहा हूँ, और वह भी सुख से । मैं स्वयं नहीं समझ पाता कि यह सब क्या हो रहा है !

× × ×

हिन्दुओं में विचित्र २ प्रकार के उत्सव होते हैं, उनमें से एक है चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी को एक कन्या और एक लगर (लडका) का न्योता करना । इसमें उन दोनों को लोग अपनी २ रुचि के अनुसार खीर-पूरी, हलुआ-पूरी या इसी तरह की चीज़ें खिलाते हैं । क्यों ? यह मैं नहीं जानता । जिस वर्ष मेरे भाई साहिब का तबादला देहरादून से मेरठ को हुआ था, तब मेरी उम्र १२ साल की थी । मेरठ मे हम लोग नये २ आए थे, इसलिए किसी से जान-पहिचान न थी,

अतः इस त्यौहार से एक दिन पहले बड़ी दिक्कत पड़ी कि किसको न्योता दिया जाय। बात यह है कि क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण के लोग ब्राह्मणों के बच्चों को खिलाते हैं। और ब्राह्मण, शुक्लों को। हम लोग सारस्वत ब्राह्मण थे। अतः सदैव शुक्लों के बच्चे ही खाने आया करते थे। शाम का समय था। घर में केवल तीन ही प्राणी थे, मैं, मेरे बड़े भाई साहिब और भाभी। भाई साहिब इस सोच में थे कि किसे बुलाया जाय। वह सी० एम० ए० दफ्तर में एम० बी० सेक्शन के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। बैठे २ उन्हें याद आया कि उन्हीं के दफ्तर के एकाउन्ट्स सेक्शन के सुपरिन्टेन्डेन्ट प० रामनारायण शुक्ल हैं और अक्सर की बात चीत से उन्हें यह भी मालूम हो चुका था कि शुक्ला जी के एक लड़की और एक लड़का है। शुक्ला जी रहते भी थे हमारे ही मुहल्ले में, केवल कुछ गलियों के अन्तर पर। झट उन्होंने मुझसे कहा कि, जीवन! जाओ! देखो असुक स्थान पर शुक्ला जी का मकान है। उनके दोनों बच्चों को कल सुबह अपने यहाँ खाने के लिए कह आओ। मै चला गया। दरवाजा खुला था। सामने ही आँगन में शुक्ला जी आसीन थे। मै उन्हें जानता था क्योंकि कई बार वह हमारे घर आए भी थे। मैंने 'नमस्ते' कहकर उन्हें सन्देश दिया। उन्होंने आवाज लगाई 'आशा और रमेश यहाँ आओ।' और एक ११ साल की लड़की और ६ साल का लड़का आ खड़े हुए। शुक्ला जी ने कहा 'देखो! कल तुम्हारा इन जीवन बाबू के यहाँ न्यौता है। सुबह तय्यार रहना। यह तुम्हे बुलाने आएँगे।' फिर मुझसे कहा 'ये लोग तुम्हारा मकान तो जानते नहीं। सुबह इन्हें बुला ले जाना।' मैं 'अच्छा' करके चला आया।

दूसरे दिन सुबह वे दोनों हमारे यहाँ खाने आए। भाभी गर्म गर्म पूड़ियाँ सेकती जाती थीं और परोसने का काम मै कर रहा था। मैंने उस लडकी से पूछा था 'कहो! खीर मीठी तो ठीक है?' और उत्तर मे मिला 'हाँ' मै आज भी याद रक्खे हूँ। अहा! उस 'हाँ' में कितनी मिठास, कितना माधुर्य! परोसता जाता और उस लडकी की ओर मुग्ध

दृष्टि से देखता जाता। न जाने क्यों वह मुझे बहुत अच्छी लग रही थी। उसका भोला मुँह देखते ही बनता था।

\+ + +

जीवन की एक-आध घटना ही विशेष हुआ करती है। शेष सब तो उसी के पीछे पीछे चलती हैं। लोग प्रायः लिखा और बतलाया करते हैं कि मेरा उस लडकी के साथ अमुक घटना के द्वारा प्रेम हो गया और उसके बाद इन इन घटनाओं से बढ़ता गया। किन्तु प्रेम करने से नहीं हुआ करता। वह तो एक प्रकार की ईश्वरीय देन होती है। जिससे विधाता चाहता है उसी से प्रेम करा देता है।

आप समझते होंगे कि अजीब प्रेम है। एक बार बातचीत हुई, दुबारा मिलना हो गया, फिर घनिष्टता बढ़ गई। बस, प्रेम हो गया। प्रेममय बातों के अलावा कुछ है ही नहीं मेरी कहानी में। पर सच बात तो यह है कि आज इन सब बातों को एक अर्सा हो गया। और अब केवल वही खास-खास बाते याद रह गई हैं जिनसे मेरा और आशा का सम्बन्ध है। जब मुझे उसकी याद आती है तो सिनेमा के चित्रों की भाँति बनती-बिगड़ती रेखाएँ सामने आती चली जाती हैं और एक कहानी के रूप में मैं आशा के जीवन को पाता हूँ। ऐसा हुआ, उसके बाद ऐसा हुआ, और फिर इसी तरह ....।

मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह प्रेम ही था। जो कुछ मैं उसके प्रति अनुभव करता था और हूँ, हो सकता है कि प्रेम न हो। उसे देखकर जो विचार मेरे हृदय में स्थान पाते थे, उनको प्रेम की परिभाषा देनी चाहिए वा नहीं, इस बारे में मैं वाकुरहित हूँ। हाँ, मैं कभी उसकी ओर वासनावश प्रवृत्त न हुआ। इस बात का ख्याल भीं न आता था। शायद यही वह निर्मल वस्तु हो जिसे लोग इन्द्रिय सम्भोग जन्म सुख से रहित शुद्ध प्रेम कहते हैं।

\+ + +

२-३ साल तक आशा और रमेश ही हमारे यहाँ उस न्योते को खाने

आते रहे। इस बीच में कुछ आना-जाना भी रहा; किन्तु वह केवल भाभी और आशा की माँ में ही। कभी कभी मैं आशा को बगल में बस्ता दबाए किसी स्कूल को जाते देखता। दिन आते गए और जाते गए।

सयोग से शुक्ला बाबू ने मकान बदला और हमारे घर के सामने वाले मकान में आकर रहने लगे। अब क्या था, भाई साहब और शुक्ला जी में मेलजोल पहले से ही था, अब बच्चों में भी आना-जाना बढ गया। मैं आशा के यहाँ जाता और वह मेरे यहाँ आती। कभी कभी भाभी उसके यहाँ जा बैठती और तब हम सब बच्चे अपने घर पर 'लूडो' खेला करते। आशा को लूडो का बड़ा शौक था। कभी आशा की माँ मेरे यहाँ आ जातीं तो मै जाकर आशा के यहाँ खेलता। उसके यहाँ 'कैरम' था जिसका मैं बहुत शौकीन था। हम सब नई रोशनी के थे और पर्दे को नहीं बर्तते थे। गर्मियों में दिन में हम लोग मिला करते और जाड़ों मे शाम को। भाई साहब और शुक्ला जी दोनों सुबह ६ बजे दफ्तर चले जाते थे और शाम को देर से लौटते थे। वे दोनों साथ ही साथ जाते। दफ्तर घर से बहुत दूर था। हम लोग बड़े होते गए इसी तरह हँसते-खेलते, खाते-पीते। १६ वर्ष की उम्र में मैंने प्रथम श्रेणी में एण्ट्रेन्स पास किया और उसने १५ साल की उम्र मे आठवीं कक्षा में सकेण्ड आई। मैंने मेरठ कालिज ज्वाइन किया वह भी आगे पढती रही। चैत्रमास की नवमी फिर आई। और अष्टमी को मेरे सामने भाभी ने आशा को घर पर बुलाकर उससे अगले दिन आने को कहा। पर उसने कह दिया, "अब मै खाने नहीं आऊँगी। मै अब बडी हो गई।" बहुत-कुछ कहने-सुनने पर भी वह न मानी। मैं खाने कहीं जाता ही न था, क्योंकि हमारे यहाँ ऐसा रिवाज नहीं था। निदान दूसरे कन्या-लगर खाने आए।

मैं 'रसीली कहानियाँ' और 'विद्यार्थी' मँगाया करता था मुझमें यह आदत थी कि मैं अपनी चीज किसी दूसरे को छूने न देता था।

एक दिन मैं मूँढ़े पर बैठा हुआ 'विद्यार्थी' पढ रहा था। इतने में आशा आ गई। मैं आखीरी कहानी का अन्तिम पैराग्राफ पढ़ रहा था। पढ़ कर चुका, तो वह बोली 'जीवन बाबू! क्या तुम मुझे यह पढ़ने को दोगे?' मैं चुपके से अब तक इन कहानियों को पढ़ कर एक आलमारी में रख दिया करता था, ताकि कोई दूसरा उन्हें देखकर माँग न बैठे। पर उस दिन मैं वह मैगज़ीन देने से इन्कार न कर सका। एक ही घण्टे बाद वह लौटी और बोली, "यह तो मुझे बहुत अच्छी लगी। तुम्हारे पास अगर दो-चार पुरानी मैगजीन्स पड़ी हों तो दे दो।" और मैंने ५-७ 'रसीली कहानियों' की पत्रिकाएँ उसे दे दीं।

शाम को एक-दिन मै, भाभी और आशा बैठे बातें कर रहे थे। किसी तरह खूबसूरती पर बात आ गई। भाभी बोलीं 'मैं तो बहुत पतली और काली हूँ। गोरा रंग तो उसे कहते हैं जैसा आशा का है।' आशा ने कहा, 'कहीं भी नही। पतली तो नही हो तुम। और काली भी नहीं कही जा सकती। और नक्शा तो तुम्हारा बहुत अच्छा है।' भाभी एण्ट्रेन्स पास थीं, इसलिए किसी से पर्दा न करती थीं। आखिर को उनमें यह तय हुआ कि मुझसे पूछा जाय कि कौन अधिक खूबसूरत है। दोनों अपने को बदसूरत बतलाते। और मैं निर्णय करने जा रहा था कि 'भाभी तो न गोरी हैं न काली। बदन भी अच्छा है। नक्शा बुरा नहीं है। लेकिन आशा तो एक गुलाब का फूल है।' और वास्तव में उसके चेहरे की लालिमा प्रातः कालीन सूर्य से खिले हुए गुलाब की भाँति थी। मेरे यह सब कहने से पहले ही भाई साहब दफ्तर से आ गए और आशा उठकर घर चली गई।

आशा का भय्या रमेश पढ़ने में बहुत कमज़ोर था। एक दिन उसकी माँ ने मुझसे कहा 'भैया! तनिक रोज़ाना एक घण्टा इसे पढा दिया करो। और तब से कभी मैं उसके यहाँ जाकर पढ़ा आता, और कभी वह मेरे यहाँ आकर पढ जाता। अक्सर आशा भी कुछ पूछ लिया करती। एक महीना समाप्त होने पर आशा की माँ ने १०) लाकर मेरे

हाथ पर धरे । मै चौंक पड़ा । मैने जबर्दस्ती रुपए लौटा दिए और कह दिया 'अगर आप यह झगडा पालेंगी तो कल ही से मै रमेश को पढ़ाना बन्द कर दूँगा' । बहुत देर मे मानी वह !

हाँ ! और मुझे लगता है जैसे ये सब कल ही की बातें हों । एक बार मैं गर्मियों में २१ दिन के लिए बीमार रहा । मुझे म्यादी बुखार हो गया था । और तब देखा था मैंने आशा का सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप ! भाभी इधर-उधर के काम-काज मे लगी रहती थीं । कभी भाभी आशा को बुला लेतीं और कभी उसकी माँ स्वयं ही उसे भेज देतीं । रमेश और उसकी माँ भी मेरे पास बैठा करते । किन्तु अधिकतर आशा ही मुझे दवा पिलाती । उसके हाथ से दवा पीते समय मुझे लगता मानों मैं अच्छा हो रहा हूँ । पर ४-५ रोज बाद वह भी बीमार पड़ गई । और तब भाभी के हाथ की दवा मुझे अच्छी न लगती थी । आशा के द्वारा पिलाई गई दवा मे तो कड़ुवापन जाता रहता था और मिठास आ जाती थी, परन्तु भाभी के हाथों से वह और भी कड़ुवी हो जाती थी । परन्तु एक सप्ताह बाद आशा अच्छी हो गई और फिर ८-९ दिन मे ही उसने मुझे भी अच्छा कर दिया । मेरी खाट के पास कुर्सी डालकर मुझे कहानियाँ सुनाया करती । और मै उसकी ओर निहारता-निहारता चैन की नींद सो जाता । ओह ! वे क्षण नहीं भूले जा सकते ।

हमारी गली में सब बड़े-बड़े और सुशिक्षित पुरुष ही रहते थे । हमारी गली में एक डाक्टर, एक वकील, एक मास्टर, एक इञ्जीनियर और एक डिप्टी कलक्टर के अतिरिक्त और कोई न रहता था । ये सब पुरानी चाल-ढालों को नापसन्द करते थे । एक दिन भाई साहब तो भाभी को लेकर उन्हें डाक्टर को दिखाने चले गए । इतने मे पानी बरसने लगा और मैं बाहर चबूतरे पर आ बैठा ओह, वह दृश्य । रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था । सामने देखा मैंने आशा को अपने मकान के चबूतरे पर बैठे हुए । इतवार का दिन था । दोपहर का समय । मैंने उससे पूछा, "तुम यहाँ क्यों बैठी हो ।" उसने उत्तर

दिया, "पिता जी तो आज सुबह बरेली गए हैं। माता जी के बड़े ज़ोर का बुखार चढ़ा है और वह पड़ी सो रही हैं। रमेश कहीं गया है।" और तब मैं बहुत देर तक नजर गड़ाए उसकी ओर देखता रहा था और वह मेरी तरफ। आँखों से निकलता हुआ प्रकाश एक दूसरे की आँखों से जाकर टकराता था और उत्पादक होता एक-विचित्र अनुभूति का। और न जाने कितनी देर बैठे-बैठे हम दोनों एक दूसरे को ताकते रहे और किसी नई दुनिया की सैर करते रहे। मूसलाधार वर्षा होने के कारण कोई सड़क पर निकलता न था। वैसे भी रविवार जो ठहरा। सब अपने-अपने घरों में बैठे आराम कर रहे थे।

मैंने इन्टर पास किया। उसने मेट्रिक। भाई साहिब ने मेरे सामने दो प्रस्ताव रक्खे, अगर अभी नौकरी करना चाहो तो अभी अपने मित्र के द्वारा १२५) मासिक वेतन की दिला दूं, वर्ना रुड़की के इम्त-हान में बैठो। और मैंने कहा सोचकर बताऊँगा। अब मैं सोचता था कि यदि नौकरी करता हूँ तो ऐसे अच्छे भविष्य न मिलेंगे बाद में कभी (अर्थात् बाद में शायद इससे रद्दी नौकरी मिले)। परन्तु भाई साहब तो ग्रेजुएट हैं और मैं एफ० ए० पास करके ही रह जाऊँगा। रुड़की जाने से आशा का साथ छुटता था। मैंने निश्चय किया कि आशा के निर्णय के अनुसार काम करूँगा।

और एक दिन जब मैं बैठक में बैठा आशा और रमेश के साथ कैरम खेल रहा था और रमेश बीच में उठकर शौच चला गया, तो मैंने सुअवसर जान आशा से पूछा, कहो तो रुड़की की परीक्षा में बैठूं वर्ना नौकरी कर लूं। और मैं समझता था कि आशा जो कुछ भी तय करेगी वह मेरी भलाई के लिए ही होगा। उसने कहा 'फिर बताऊंगी।' दूसरे दिन जब मुझे उसका एक दाँत उखड़वाने के लिए एक डाक्टर के यहाँ जाना पड़ा, तो रास्ते में कहा 'जीवन बाबू! अपनी पढाई का हर्ज मत करो। मैं रोज ईश्वर से दुआ माँगूगी कि तुम कम्पटीशन में आ जाओ।' और उस समय देखा था मैंने उसका उतरा हुआ चेहरा और

डबडबाई हुई आँखें। मैंने कहा—नहीं। मैं नौकरी ही किए ले रहा हूँ। मेरे आशय को समझकर वह फीकी मुस्कराहट के साथ बोली, 'तो मैं नाराज हो जाऊंगी।' निदान मै रुडकी के इम्तहान में बैठा। पर मैं रोज मनाया करता था कि मैं फेल हो जाऊ और इसी बहाने रुड़की जाने के पिण्ड से छुट्टू। पर अफसोस! मेरी पन्द्रहवीं पोजीशन आ ही गई। और मैं इञ्जीनियरिङ्ग पढने रुड़की चला गया। ताँगें में बैठकर जाते समय देखे थे मैंने उसके दो जुड़े हुए हाथ और सुना था 'नमस्ते' का शब्द।

बड़े दिन की छुट्टियों में मैं मेरठ लौटा। घर पर आशा की माँ भी बैठी हुई थी। बातों ही बातों में मैं पूछ बैठा, 'आशा की तो शादी हो गई होगी।' जवाब मिला, "अभी कहाँ भैय्या। जब वह पैदा हुई थी तभी ज्योतिषियों ने बताया था कि उसका अठारहवाँ साल खराब है। इसलिए १८ वर्ष के बाद ही उसकी शादी करना। सो देखो चल के मेरी लड़ैती आशा ५ महीने से खाट पर पड़ी है। तुम्हारे जाने के एक महीने बाद से यह सूखने लगी और आज कल उसकी ठंठरी ही दिखाई देती है और कुछ नहीं।" मेरा दिल रो उठा। मैं उसे देखने पहुँचा। मुझे देख कर एक बार फिर उसका मुर्झायी हुआ चेहरा खिल उठा। हाथ जोड़कर उठ बैठी। मैंने जब बहुत कहा, तब जाकर फिर लेटी। आशा की माँ ने बताया कि डाक्टरों ने बोलना बिल्कुल मना किया है। पर वह न मानी, इन पाँच छः महीनों की न जाने क्या क्या बातें उसने मुझे सुनाई।

पहली जनवरी को मैं साढे पाँच बजे शाम को गाड़ी से रुड़की चला गया। ४ जनवरी को एक खत भाभी का मिला। उसमें लिखा था, "१ जनवरी को ठीक साढे पाँच बजे आशा का देहान्त हो गया।" मैं गिर पड़ा। न जाने कितनी देर बाद होश आया तो देखा कि मैं एक अस्पताल के कमरे में पड़ा हूँ। तीन चार सहपाठी सामने खड़े हैं, और एक डाक्टर पूछ रहा है, अभी आप क्या बक रहे थे। जीवन की आशा! आशा! यह कैसी आशा है। यह बेहोशी तो किसी प्रकार भी आपके जीवन का अन्त करने वाली नहीं थी।

१८–रूपक

मैने देखा। मैने ध्यान दिया। मैंने अनुभव किया। मेरे बाग में एक गुलाब का फूल था खिला हुआ। यौवन के दिनों को सुखपूर्वक बिताता हुआ। सुगन्धिप्रद, मनमोहक और आकर्षक। भौंरा उस पर चक्कर लगाया करता। भौंरा कभी उस पर बैठता और कभी उसका रसपान करता। उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाने मे विचित्र सुख का अनुभव करता। गुलाब से वह प्रेम करता था और गुलाब उससे। दोनो एक दूसरे के बिना शोभा न देते। गुलाब अकेला था भौंरा अकेला मन को न भाता। भौरा गुलाब के समीप होता और दोनों की अनोखी छबि दिखाई देती। एक दूसरे में दोनों अपने को भूले रहते। एक के बिना दूसरा भिन २ करता और अच्छा न लगता। दूसरा पहले के बिना छटाहीन रहता और दृश्य को ललित न बनाता।

मैंने गुलाब को देखा। मैं उस पर मोहित हो गया। कामवासना तीव्र हो उठी। उसे सेवन करने का विचार मन मे आया। वह असहाय था, निर्बल था। मैं उसके पास पहुँचा। देर तक उसे देखता रहा। भौंरा इस समय उसके पास न था। गया मैं स्वय ही ऐसे समय था, नहीं तो भौंरा मुझे काट खाता। मैंने इसे सुअवसर जाना। बस, फिर क्या था। मैंने उसे स्पर्श किया और मेरे हाथ में आने से पहले वह जमीन पर गिर पड़ा। वह धूलि-धूसरित हो गया। उसकी कान्ति सदा के लिये चली गई। उसका जीवन नष्ट हो गया। कहीं बाकी भी रहा, तो थोड़े दिन के लिये और वह भी दुख से भरपूर।

भौंरा कुछ देर बाद वहाँ आया। मैं पहले ही फूल को ले वहाँ से खिसक आया था। भौंरे ने देखा, वहाँ गुलाब न था। वह दूसरे पर

जा बैठा। उसने सोचा और समझा। एक फूल को सूँघ लेने पर यदि दूसरे की भी खुशबू ली जाय, तो कोई हर्ज नहीं। जब तक गुलाब उसके लिये जिन्दा था, तब तक वह ऐसा करने से डरता रहा। गुलाब उसे धिक्कारता। पर अब किस बात का खटका था!

गुलाब उसके बिना सुखी न हो सका।

क्या नारी का यही सतीत्व है?

१६–रोमान्स

मुरारी की अवस्था २० वर्ष के लगभग होगी। गठीले शरीर का गौरवर्णी, तन्दुरुस्त और देखने में भोला। ८ वीं कक्षा तक शिक्षा पाकर उसने पढना छोड़ दिया था। अपने पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् वही उनके प्रेस का कर्त्ता-धर्ता बना। प्रेस काफ़ी बड़ा था। १५० रु० से लेकर २०० रु० मासिक तक की आय उसे हो जाती। घर पर चाचा, ताऊ आदि के भी लड़के बने रहते, क्योंकि वे लोग गाँव से इलाहाबाद पढ़ने आते थे। जीवन भाइयों और यार-दोस्तों के बीच में ठठोली करते और गप लड़ाते बीतता। प्रेस में एक मैनेजर रख लिया था जो सब काम देखता था। कभी कभी दिन में चक्कर लगाने जाया करता था मुरारी। बैङ्क रोड पर एक बङ्गले में वह रहता था। कुछ चचा-ताऊ की सिराथू ग्राम में जमींदारी थी। इसलिए पैसे की तङ्गी नहीं रहती थी। बढ़िया से बढिया खाते और उम्दा से उम्दा पहिनते! मुरारी का जीवन रोमांन्टिक रहता, लड़कियों का वह बड़ा प्रेमी था। रास्ता चलते कनखियों से उन्हें देखा करता। फिर बाद को उनके ऊपर मीठे २ सपने और दर्दभरी स्मृतियाँ। उसके बङ्गले से दो-तीन बङ्गलें पहलें एक कोठी थी जिसमे कोई कप्तान साहिब रहते थे। सासारिक महासमर चल रहा था। कप्तान साहेब बाहर भेज दिए गए। थे वे-ऐंग्लो—इन्डियन। उनके एक लड़की थी जो यूनीवर्सिटी में पढती थी। घर पर नौकर-चाकर थे और वह आजाद थी। जो चाहती सो करती। नाम था उसको गुडो। ख़ूबसूरत फ़ैशनेबिल, अमीर, आकर्षक सभी कुछ थी। रिक्शे पर बैठकर यूनिवर्सिटी जाया करती। रिक्शा मुरारी के बङ्गलें के सामने से होकर जाता। एक दिन उसे देख लिया था मुरारी ने। तभी से वह उसके पीछे दीवाना बन गया था। सवा दस बजे रिक्शा जाता था और

वह दस ही बजे आकर फाटक पर डट जाया करता। रिक्शे पर बैठी हुई वह आगे निकल जाती और वह उसे देखता रह जाता। गुडो भी शायद सब कुछ समझती थी। प्रायः ऐसा होता कि मुरारी को छुट्टी का ध्यान न रहता। उस दिन भी वह फाटक पर आ खड़ा होता। साढे दस बज जाते। वह अधीर हो उठता। फिर उसे ध्यान आता कि आज तो इतवार है और वह धीमी चाल से चलता हुआ अपने कमरे में जा बैठता। गुडो की शक्ल उसके मन में बसी रहती। स्वप्नों में, और वह भी दिवास्वप्नों में वह उसकी छबि निहारता रहता। गुडो भी उसे बुरा न समझती थी। वह रोज साड़ी बदलकर नये फैशन से निकलती। उसकी आँखों पर गोल २ सुनहरा चश्मा उसकी शोभा को दूनी कर देता। उसका चेहरा चमक पड़ता। मुरारी उसे देखता और देखता ही रह जाता। रिक्शे वाला रोज यह लीला देखता पर चुप रहता।

एक दिन रिक्शे वाला अकेला जा रहा था। मुरारी और उसके साथ के लड़कों ने उसे घेर लिया। डेढ़ रुपया उसके हाथ पर धरा और कहा, "लो इसकी मिठाई खाना। पर एक काम कर दो। वह यह कि गुडो को लेकर चलते समय घंटी बजा दिया करो। जोर-जोर से हमारे फाटक तक घंटी बजाया करो।"

अगले दिन से यही होने लगा। कभी-कभी जो देर हो जाती थी, उसकी भी कमी अब दूर हो गई। घंटी की आवाज़ सुनकर मुरारी फाटक पर आ खड़ा होता। उसके दूसरे साथी अधिक दिलचस्पी न लेते। रिक्शा निकलता, मुरारी उसकी रूपमाधुरी का रसपान करता और वह मुस्करा पड़ती। रिक्शा आगे निकल जाता। गुडो भी सब कुछ जानती थी। बी० ए० में पढ़ती थी। बेवकूफ न थी। उसके लिये कोई हर्ज भी बात नहीं थी।

एक दिन मुरारी प्रेस के दफ़र में बैठा था। मैनेजर छुट्टी पर था। इसलिए वही सब काम देख रहा था। अचानक जूतों की खटखट

आवाज सुनकर उसने सिर उठाया। देखा, गुडो बड़े अदब से 'गुड मार्निङ्ग सर' कह रही थी।

मुरारी ने हाथ सिर तक लाकर कहा, "गुड मार्निङ्ग"

कुछ देर ठहर कर फिर बोला, "प्लीज बि सीटेड।"

गुडो 'थैंक्स' कहकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

मुरारी ने अँगरेजी में पूछा, "आप क्या चाहती हैं?"

"मुझे कुछ विजिटिंग कार्ड्स प्रिंट कराने हैं।"

"कितने?"

"दो सौ।"

मुरारी ने कई तरह के काग़ज उसके सामने उपस्थित किए और कहा, "इनमें से कोई-सा काग़ज आप पसन्द कर लीजिए।"

गुडो ने पसन्द का कागज बता दिया।

मुरारी ने साइज पूछा।

उत्तर मिला, "३" × २""।

"आप अपना नाम एक कागज पर लिख दीजिए।"

सारी बातें अँगरेजी मे ही हो रही थीं।

गुडो ने सुन्दर-से अक्षरों में अपना नाम लिखा और वह पर्चा मुरारी को दे दिया।

उसने फिर पूछा, "चार्जेज़ क्या होंगे?"

मुरारी ने कहा, "अरे! आप से तय करने की क्या ज़रूरत। छपने पर देखा जायगा। हाँ! इन्हें आप कब चाहती हैं?"

"फ्राइडे को।"

"यानी परसों। हाँ उस दिन शाम को आपको मिल जाएगे।"

"अच्छी बात है। गुड मार्निङ्ग!"

"गुड मार्निङ्ग"

दोनों एक दूसरे की ओर गौर से देख रहे थे। एक विचित्र प्रकार के सुख की अनुभूति उन्हें हो रही थी। गुडो चली गई। उसके जूतों की आवाज़ बहुत देर तक मुरारी के कानों में आती रही।

शुक्रवार को ५ बजे गुडो मुरारी से उसके प्रेस में 'गुड ईवनिंग' कर रही थी। मुरारी ने पहले से ही सुन्दर २ विजिटिंग कार्ड्स तैयार करा लिये थे। गुडो के आने पर उसने वे कार्ड्स उपस्थित किए। गुडो उन्हें देखने लगी और मुरारी कुछ लिखने लगा। लिखना खत्म करके उसने ऊपर देखा। सामने गुडो उस पर दृष्टि गड़ाए बैठी थी। मुरारी को देख मुस्कराई और बोली, "ये बिल्कुल अभीष्ट हैं।"

फिर उसने मनीबेग निकाला और पूछा "कितने दाम दूँ ?"

मुरारी कैसे कहता कि उसे दाम देने की क्या जरूरत। उसने कहा, "अभी मैंने बिल नहीं बनाया है।"

"फिर भी अन्दाजन कितने रुपये होंगे ?"

"यही कोई तीन रुपये," मुरारी के मुँह से ये शब्द कठिनता से निकल पा रहे थे, "घबड़ाइये नहीं। मैं बिल कल शाम तक आप के घर पर ही भिजवा दूँगा।"

"औलराइट" करती हुई गुडो चली गई।

शनिवार की शाम को मुरारी ने सिर्फ २ रुपए का बिल बनाया और स्वय दाम वसूल करने गुडो के घर की ओर चला। फाटक पर पहुँचकर ख्याल आया "भई मुझे अपनी स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए। माना कि उससे हँसने-बोलने को मिलेगा और शायद काम भी बन. ...। परन्तु वह तो ऐंग्लो-इन्डियन है। उसका क्या ठिकाना ? मैं कोई ऐसी-वैसी बात कर बैठा और उसने नौकरों से चार धक्के लगवा दिए। तो क्या होगा। सारी इज्जत खाक में मिल जाएगी।" और वह उल्टे पाँव प्रेस लौट आया। एक चपरासी के हाथ बिल भेज दिया। मँगवाए फिर भी दो रुपए ही।

गुडो के भी दिल में खलबली मची थी। वह चपरासी और २ रुपये देख मुरारी को एक 'ऐट होम' में बुलाना चाहती थी उसने चाहा कुछ नहीं तो एक प्रेम पत्र ही भेज दूँ। पर डर उसे भी वहीं था जो मुरारी को।

दोनों एक दूसरे को स्वप्न की दुनिया में पाते।

पर संकोच-वश दोनों ओर से खींचातानी रही।